१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥

निर्मल उपदेश

श्रीमान 108 महंत बुड्ढा सिंह जी महाराज

निर्मल आश्रम ऋषिकेश

प्रकाशक :
महंत राम सिंह
निर्मल आश्रम, निर्मल मार्ग
ऋषिकेश - 249201
जनपद-देहरादून (उत्तराखंड)

❑ नवीन संशोधित संस्करण : जुलाई 2012

❑ सर्वाधिकार प्रकाशक के सुरक्षित हैं।

मुद्रक :
संजय प्रैस
शाहदरा, दिल्ली।

नवीन संशोधित संस्करण हेतु

मई सन् 1981 ई० में परम् आदरणीय ब्रह्मलीन गुरुदेव श्रीमान 108 संत बाबा निक्का सिंह 'विरक्त' जी महाराज ने अपने अनन्य सेवक भाई राम सिंह को संत पदवी की बखशिश की। निर्मल भेख बख्श कर श्री निर्मल आश्रम ऋषिकेश का महंत नियुक्त किया जोकि वर्तमान में गद्दी नशीन हैं। थोड़े समय पश्चात् अप्रैल सन् 1983 ई० में दास जोध सिंह तथा गुरिंदर सिंह 'छोटू' को भी निर्मल भेख बखशिश किया। आर्शीवाद देकर पूज्य महंत बाबा राम सिंह जी के साथ ऋषिकेश जाकर निर्मल आश्रम की प्रगति के लिए सेवा करने की आज्ञा की। समूह साध-संगत पर बेअंत कृपा करते हुए प्रभु आज्ञानुसार आप जी 22 जुलाई सन् 1983 ई० शुक्रवार, आषाढ़ सुदी 13 को निर्मल कुटिया, नगर गोराया (पं.) में सचखंड पियाना कर गए। आप जी के दैवी वचनों के फलस्वरुप निर्मल आश्रम में लंगर, अन्न-छेत्र, भंडारे, गरीबों, जरुरतमंदों तथा साधु-संतों की सेवा आदि कार्यों में विशेष रुप से बढ़ोतरी होने लगी।

श्रीमान महंत बाबा राम सिंह जी की दयालु सोच के कारण ही 14 अप्रैल, सन् 1986 ई० को हरिद्वार कुंभ मेले के शुभ अवसर पर निर्मल आश्रम अस्पताल की नींव रखी गई और 13 अप्रैल सन् 1990 ई० में इस अस्पताल को मानवता की सेवा में अर्पण कर दिया गया। इस के पूर्व निर्मल आश्रम की रिहायशी ईमारत में लगभग 20 कमरे नये बनाये गये और कुछ पुराने कमरों का नवीनीकरण कराया गया। सन् 1992 ई० को निर्मल बाग कनखल (हरिद्वार) की नई ईमारत (सतसंग हाल) का निर्माण कार्य शुरु हुआ जिसका उदघाटन अक्तूबर सन् 1994 ई० में किया गया। गऊशाला, उपवन (बाग-बागीचा) तथा कृषि (खेती-बाड़ी) में कई और आधुनिक तकनीकें जोड़ी गईं। इस प्रकार आश्रम की बहुपक्षी प्रगति होने लगी।

प्रस्तुत पुस्तक 'निर्मल उपदेश' के प्रकाशक परम पूज्य श्रीमान् 108, सेवा के पुंज, महान परोपकारी, ब्रह्मज्ञानी महंत बाबा राम सिंह जी (निर्मल आश्रम-ऋषिकेश) हैं। उनकी आज्ञा तथा आर्शीवाद से इस पुस्तक की भाषा में कुछ आवश्यक परिवर्तन करके फिर से छपवाया गया है। इस पुस्तक के वर्तमान रुप में आने की कहानी इस प्रकार है-

सन् 1993 ई० के दौरान एक दिन निर्मल आश्रम ऋषिकेश के पुस्तकालय में रखी पुस्तकों की देख-भाल करते हुए मुझे सिंधी भाषा में छपी कुछ पुस्तकें मिलीं। आश्रम में ठहरे हुए एक सिंधी प्रेमी से उन पुस्तकों के लेखकों के नाम तथा विषय-वस्तु के बारे में जानकारी प्राप्त की। उनमें से एक पुस्तक का नाम था 'निर्मल उपदेश अथवा गुरुमुख एवं मनमुख के लक्षण'। यह पुस्तक परम् पूज्य, महान विद्वान, तत्तवेता, ब्रह्मज्ञानी महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी महाराज के प्रवचनों का संग्रह था। आप जी ने देश के कोने-कोने में भ्रमण करते हुए साध-संगत को गुरुवाणी से जोड़ा तथा परमानंद का मार्ग दिखाया। इस प्रकार प्रचार करते हुए एक बार सन् 1923 ई० में उन्होंने श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के अंग 131 पर श्री गुरु अर्जन देव जी द्वारा उच्चारण राग माझ की एक अष्टपदी की सम्पूर्ण व्याख्या की। महाराज जी द्वारा किए प्रवचनों को उनके एक सिंधी सत्संगी सेवक साथ-साथ लिखते रहे और बाद में उसे छपवा कर एक पुस्तक का रुप दे दिया था। पुस्तकालय से यह पुस्तक प्राप्त होने के बाद हम ने आपस में विचार किया कि क्यों न इस पुस्तक का पंजाबी में भी अनुवाद करके छपवाया जाये ताकि सिंधी संगत के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी इसका लाभ ले सकें। संत गुरिंदर सिंह 'छोटू जी' ने एक सिंधी प्रेमी भाई मूल चन्द जी मुम्बई निवासी की सहायता से इस पुस्तक का पंजाबी अनुवाद करना शुरु कर दिया। ततःपश्चात उस लिखित सामग्री को शुद्ध पंजाबी का रुप देने में मुझे सेवा का अवसर प्राप्त हुआ।

इस प्रकार निर्मल उपदेश (पंजाबी) का पहला संस्करण मार्च सन् 1994

ई० में छपा और पंजाबी भाषा जानने वाले देश-विदेश में बैठे सैंकड़ों प्रेमियों ने इस उत्तम और सरल भाषी ग्रंथ को पढ़कर लाभ उठाया। क्योंकि यह पुस्तक सरल भाषा में प्रश्नोत्तर क्रम से दृष्टांतों सहित लिखी हुई है इसलिए पुस्तक के विषय- वस्तु की आसानी से समझ आ जाती है। अतः हिन्दी भाषा पढने वाली संगत की ओर से भी इसे हिन्दी में छपवाने की माँग आने लगी। अतः निर्मल उपदेश का हिन्दी में अनुवाद डा० मदन गुलाटी जी, करनाल से करवा कर पहली बार सन् 1995 ई० में छपवाया गया। बड़े शहरों तथा विदेशों में रहने वाले कुछ प्रेमियों ने जो ना तो पंजाबी पढ़ सकते थे और ना ही हिन्दी, इस पुस्तक को अंग्रेजी में छपवाने की माँग की। अतः इसे स. वरियाम सिंह जी- देहरादून से अंग्रेजी में अनुवाद करवा कर छपवाया गया।

पुस्तक का यह हिन्दी संस्करण 'निर्मल उपदेश' (पंजाबी) के संशोधित संस्करण पर आधारित है।

निवेदक

संत जोध सिंह

जुलाई, 2012 निर्मल आश्रम-ऋषिकेश

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ।।

माझ महला ५

कउणु सु मुकता कउणु सु जुगता ।।
कउणु सु गिआनी कउणु सु बकता ।।
कउणु सु गिरही कउणु उदासी
कउणु सु कीमति पाए जीउ ।।१।।
किनि बिधि बाधा किनि बिधि छूटा ।।
किनि बिधि आवणु जावणु तूटा ।।
कउण करम कउण निहकरमा
कउणु सु कहै कहाए जीउ ।।२।।
कउणु सु सुखीआ कउणु सु दुखीआ ।।
कउणु सु सनमुखु कउणु वेमुखीआ ।।
किनि बिधि मिलीऐ किनि बिधि बिछुरै
इह बिधि कउणु प्रगटाए जीउ ।।३।।
कउणु सु अखरु जितु धावतु रहता ।।
कउणु उपदेसु जितु दुखु सुखु सम सहता ।।
कउणु सु चाल जितु पारब्रहमु धिआए
किनि बिधि कीरतनु गाए जीउ ।।४।।

गुरमुखि मुकता गुरमुखि जुगता ।।
गुरमुखि गिआनी गुरमुखि बकता ।।
धंनु गिरही उदासी गुरमुखि
गुरमुखि कीमति पाए जीउ ।।५।।
हउमै बाधा गुरमुखि छूटा ।।
गुरमुखि आवणु जावणु तूटा ।।
गुरमुखि करम गुरमुखि निहकरमा
गुरमुखि करे सु सुभाए जीउ ।।६।।
गुरमुखि सुखीआ मनमुखि दुखीआ ।।
गुरमुखि सनमुखु मनमुखि वेमुखीआ ।।
गुरमुखि मिलीऐ मनमुखि विछुरै
गुरमुखि बिधि प्रगटाए जीउ ।।७।।
गुरमुखि अखरु जितु धावतु रहता ।।
गुरमुखि उपदेसु दुखु सुखु सम सहता ।।
गुरमुखि चाल जितु पारब्रहमु धिआए
गुरमुखि कीरतनु गाए जीउ ।।८।।
सगली बणत बणाई आपे ।।
आपे करे कराए थापे ।।
इकसु ते होइओ अनंता
नानक एकसु माहि समाए जीउ ।।९।। (अंग १३१)

इस अष्टपदी के जो पहले चार पदे हैं, इन पदों में श्री गुरु अर्जन देव जी ने प्राणी मात्र के लिए चौबीस (24) प्रश्न अंकित किये हैं जिन के उत्तर क्रमानुसार अंतिम चार पदों में दिए हैं। नौवें पदे में पूरी अष्टपदी के उपदेश का सारांश है।

प्रश्न 1. कउणु सु मुकता-मुक्त कौन होता है?

उत्तर-गुरमुखि मुकता- भाव, गुरमुखि (गुरुमुख) मुक्त होता है। मुक्ता का अर्थ है बंधनों से मुक्त होना, आज़ाद होना या छूटना अर्थात जिस भी प्राणी को सब दुखों से निवृत्ति होने के पश्चात परमानंद की प्राप्ति होती है, वही गुरुमुख होता है।

ऐसा देखने में आ रहा है कि सारी सृष्टि में सभी धर्मों को मानने वाले लोग-अर्थात हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि निस्संदेह मुक्ति के सुख को पाना चाहते हैं परंतु अज्ञानता के कारण इस सुख को प्राप्त करने का सही उपाय छोड़कर, दूसरे ही उपाय करने में लगे हुए हैं। अब प्रश्न पैदा होता है कि मुक्त होने का सच्चा और सही मार्ग कौन-सा है? इसका उत्तर गुरु साहिब ने स्वंय ही दिया है कि गुरुमुख होकर ही मुक्त अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा ही शास्त्रों में भी कहा गया है कि यदि सूर्य, पूर्व की अपेक्षा पश्चिम से उदय हो या तिलों की अपेक्षा रेत से तेल निकलने लगे, जबकि दोनों बातें होने वाली नहीं हैं अर्थात असंभव हैं, यद्यपि हो भी जाएँ, तो भी गुरुमुख होना ही मुक्ति का वास्तविक मार्ग है। गुरुमुख हुए बिना प्रभु-प्राप्ति की कोई सम्भावना नहीं है। यदि कोई पूछे कि क्या इस दुनिया में ऐसे पुरुष हुए भी हैं, यदि हुए हैं, तो उदाहरण दो। इसका उत्तर यह है कि सभी वेदों, शास्त्रों, पुराणों एवं भक्तों और गुरुओं के इतिहास में से यदि ऐसे गुरुमुखों की कथाएँ वर्णन करने

लगें, तो कोई अंत नहीं है। उदाहरणतः सूरज प्रकाश ग्रंथ में अनेक मुक्त पुरुषों के प्रसंग वर्णन किये हुए हैं जो गुरुमुख होकर मुक्त हो चुके हैं। इनमें से केवल तीन दृष्टांत ही दिये जा रहे हैं–

दृष्टांत १– सर्वप्रथम उदाहरण श्री गुरु अंगद देव जी की है, जो स्वयं ही गुरुमुख होकर, हम सब के आदर्श बने।

एक समय की बात है कि बाबा बुड्ढा जी जोकि गुरुघर में पूर्ण गुरसिख हुए हैं और जिनको छह पातशाहियों (गुरुओं) तक गुरुता गद्दी के समय तिलक लगाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनके मन में संशय उत्पन्न हुआ कि श्री गुरु नानक देव जी का प्रेम, मेरी अपेक्षा भाई लहणा जी (बाद में श्री गुरु अंगद देव जी) की ओर कुछ अधिक दिखाई दे रहा है। अंतर्यामी श्री गुरु नानक देव जी महाराज ने बाबा बुड्ढा जी के मन की बात जानकर उनके संशय की निवृत्ति के लिए एक परीक्षा ली।

एक बार जब रात्रि का एक पहर (तीन घंटे का एक पहर होता है) शेष था, सच्चे पातशाह श्री गुरु नानक देव जी ने प्यार भरी आवाज़ में कहा, भाई बुड्ढा जी बाहर जाकर देखो कि कितनी रात बाकी है? बाबा बुड्ढा जी ने हुक्म मानते हुए बाहर जाकर आकाश में तारों की ओर देखा और आकर गुरु महाराज जी को बताया, हे सच्चे पातशाह! डेढ़ पहर रात्रि बाकी रहती है। तो गुरु साहिब जी ने कहा, नहीं भाई, अच्छी तरह देख-परख के बताओ। उसी समय बाबा बुड्ढा जी बाहर गए, अच्छी तरह देखकर वापस आए और पहले वाला ही उत्तर दिया। ततःपश्चात गुरु नानक साहिब, भाई लहणा जी को कहने लगे, भाई लहणा! बाहर जाकर देखो कि कितनी रात बाकी रहती है? भाई लहणा, गुरु जी के हुक्म की पालना करते हुए, उसी समय बाहर गए। वापस आकर उन्होंने गुरु साहिब जी की हजूरी में हाथ जोड़कर बहुत

नम्रतापूर्वक प्रेम से आँसू बहाते हुए विनती की, हे सच्चे पातशाह! दीन दुनिया के मालिक! जितनी रात्रि आप जी ने गुजारी है, उतनी गुजर चुकी है और जितनी रखी है, उतनी ही बाकी रहती है। ये उत्तर सुनकर श्री गुरु नानक देव जी बहुत प्रसन्न हुए और भाई लहणा को प्रेम पूर्वक गले लगा लिया। ऐसा देखकर बाबा बुड्ढा जी का संशय दूर हो गया। इस दृष्टांत से सिद्ध होता है कि सतगुरुओं के उपदेश द्वारा अहंकार का रोग निवृत्त हो जाता है और सतगुरु उस गुरुमुख सिख को अपने में अभेद करके उसे मुक्ति का मार्ग दिखा देते हैं।

दृष्टांत २- तीसरे पातशाह श्री गुरु अमरदास साहिब जी के दो दामाद थे। एक थे भाई रामदास और दूसरे थे भाई रामू। एक समय संगत में विचार चल रहा था कि श्री गुरु अमरदास साहिब जी इन दोनों में से किसको गुरुता गद्दी बखशिश करेंगे? संगत के इस संशय को दूर करने के लिए एक दिन गुरु साहिब अपने दोनों दामादों को साथ लेकर बाहर की ओर आये और एक जगह खड़े होकर कहने लगे कि इस स्थान पर हमने एक थड़ा (चबूतरा) बनवाना है। अतः दोनों को अलग-अलग थड़े बनाने की आज्ञा की और कहने लगे, कल शाम को हम आप द्वारा बनाये गये थड़ों को देखने आयेंगे। दूसरे दिन दोनों दामादों ने आज्ञा अनुसार एक-एक थड़ा तैयार किया। शाम को गुरु साहिब जी स्वयं थड़े देखने आए। भाई रामू का चबूतरा देखकर कहने लगे कि यह तो ठीक नहीं बना, इसको तो तोड़कर दुबारा बनाओ। ऐसा सुनकर भाई रामू मुँह से तो कुछ नहीं बोला परंतु मन ही मन में बहुत दुखी हुआ। उसके बाद गुरु साहिब, भाई रामदास के पास गए। उनको भी इसी तरह कहा कि चबूतरा ठीक नहीं बना परंतु रामदास जी ने उदास होने की अपेक्षा प्रेमपूर्वक हाथ जोड़कर विनती की, हे सच्चे पातशाह मुझसे भूल हो गई है, इस बार

आप जी कृपा करके क्षमा कर दो और दुबारा जैसी आज्ञा करोगे, वैसे ही हुक्म की पालना करूँगा। इसी प्रकार गुरु महाराज जी ने तीन बार नये बने थड़े तुड़वा दिए। भाई रामू ने मन ही मन में सोचा कि बहत्तर वर्ष की आयु के पश्चात इन्सान की बुद्धि सामान्य नहीं रहती। अब गुरु अमरदास साहिब जी की अवस्था बुढ़ापे वाली हो चुकी है, इसलिए ऐसा बेकार (व्यर्थ) हुक्म कर रहे हैं, परंतु भाई रामदास की वही प्रेम और नमृता वाली अवस्था बनी रही और वह प्रसन्नचित्त रहकर आज्ञा की पालना करते रहे और पूर्ण गुरुमुख होने का उदाहरण प्रस्तुत किया। फलस्वरुप अपने सतगुरु में अभेद होकर मुक्ति का आनंद प्राप्त किया और भाई रामू मनमुख होने के कारण मुक्ति के सुख को न पा सके।

दृष्टांत ३- श्री गुरु अर्जन देव जी महाराज के समय की एक घटना है कि एक सिख, गुरु के लंगर में से प्रतिदिन लंगर प्रसाद ग्रहण करता था परंतु वह कोई भी सेवा नहीं करता था। जब सेवादार उसे सेवा करने के लिए कहते तो उन्हें यह उत्तर देता, भई, मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगा। जैसा गुरु साहिब जी मुझे कहेंगे वैसा ही करूँगा। यह बात बहुत दिनों तक ऐसे ही चलती रही। आखिर में कुछ सेवादारों ने एक दिन उस सिख की बात गुरु साहिब को बता दी। यह बात सुनकर गुरु साहिब ने उस सिख को अपने पास बुलाया और कहने लगे कि हे प्यारे! तू मेरी आज्ञा मानेगा? उस सिख ने उत्तर दिया, हाँ महाराज! आप जी का वचन कैसे नहीं मानूँगा! परंतु बाकी सिखों की बात नहीं मानूँगा। गुरु साहिब ने फरमाया, भाई! हमारी आज्ञा यह है कि जंगल में जाकर लकड़ियाँ इकट्ठी करो, चिता बनाओ और खुद को उस चिता में ज़िंदा जला लो। यह बात सुनकर उस सिख ने मुँह से तो हाँ कर दी और हाँ जी महाराज! हाँ

जी महाराज! कहता हुआ आज्ञा पूरी करने के लिए बाहर की ओर चल पड़ा। परन्तु उसने मन से तो हाँ की नहीं थी क्योंकि वह तो कच्चा सिख था, गुरुमुख तो था नहीं। वह चलते हुए बार-बार पीछे की ओर मुड़कर देखता जा रहा था कि कहीं गुरु साहिब उसे वापस बुलाने के लिए पीछे कोई आदमी तो नहीं भेज रहे। ऐसा सोचता हुआ वह जंगल में पहुँचा। लकड़ियाँ इकट्ठी करके चिता बनाकर आग तो लगा दी परंतु अपने शरीर से मोह होने के कारण, खुद को जलाने की हिम्मत न कर सका। उसका मन कमज़ोर पड़ गया। खुद को आग में जलाने की अपेक्षा वह जलती हुई आग के चारों ओर चक्कर लगाने लगा। इतनी देर में बादशाह के महल में से चोरी करके एक चोर वहाँ आ पहुँचा, उसने ऐसा अजीब दृश्य देखकर उस सिख से सारी बात पूछी। बात सुनकर वह चोर बोला, हे प्यारे! तू मेरे साथ एक सौदा कर ले, मेरा सारा धन-माल तू ले ले और उसके बदले में गुरु जी की आज्ञा वाला वचन शुद्ध मन से संकल्प करके मुझे दे दे। यह बात सुनकर वह कच्चा सिख बड़ा खुश हुआ और गुरु जी की आज्ञा वाला वचन उस चोर को देकर, उससे धन ले लिया। चोर, उसी समय गुरु साहिब का ध्यान करके आग में कूद पड़ा। उसी समय देवता गण बबाण लेकर आए और उस की आत्मा को बबाण में बैठाकर परमधाम में ले गए। यह है गुरुमुख जिसे गुरु की आज्ञा मानने के कारण परमधाम की प्राप्ति हुई। दूसरी ओर उस मनमुख की हालत यह हुई कि चोर का पीछा करते-करते बादशाह के आदमी उस जगह पर पहुँचे और उसे पकड़ लिया। चोरी का सारा माल उससे वापस ले लिया और उसे बादशाह के सामने पेश किया। बादशाह के पूछने पर उसने सारी बात सच-सच बता दी। बात सुनकर बादशाह ने हुक्म दिया कि इसने तो गुरु साहिब की आज्ञा का उल्लंघन किया

है, इसकी तो शक्ल देखना भी गुनाह है और उसको फाँसी देने का हुक्म कर दिया।

इस दृष्टांत से स्पष्ट हो जाता है कि गुरुमुख होने के कारण चोर को मुक्ति मिली और मनमुख की कितनी दुरगति हुई। इस प्रकार गुरुमुख प्राणी अपने गुरु जी का वचन मानकर, इस संसार के बंधनों से छूट जाते हैं। यह है *गुरमुखि मुकता* ।

प्रश्न 2. कउणु सु जुगता।।- परमेश्वर के साथ जुड़ा हुआ अर्थात मिला हुआ कौन होता है?

उत्तर-गुरमुखि जुगता।। भाव, गुरुमुखि ही परमेश्वर से युक्ति-पूर्वक जुड़ा होता है।

संसार के बाहरी और आंतरिक पदार्थों को प्रयोग करने में युक्ति का होना अधिक आवश्यक है। व्यवहार और परमार्थ में सही युक्ति गुरु के अतिरिक्त और कोई नहीं समझा सकता। भगवान श्री कृष्ण ने गीता के छठे अध्याय के सत्तारहवें श्लोक में उच्चारण किया है-

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

तात्पर्य-युक्ति द्वारा आहार और व्यवहार करने से सुखों की प्राप्ति होती है। चलना-फिरना, सोना-जागना, ये सब युक्तिपूर्वक करने से जीव के सब दुख दूर होते हैं। इस प्रकार संसार में रहकर भी जो जीव, कमल फूल की भांति असंग और निर्लेप रहेगा, वही गुरुमुख होगा। राजा जनक तथा वशिष्ठ जी दोनों ही क्रमशः राजा और पुरोहित का कार्य करते हुए भी निर्लेप रहे। सांसारिक कार्य करते हुए भी निर्लेप रहने की यह युक्ति गुरुमुख हुए बिना प्राप्त नहीं हो सकती। यह बात निम्न दृष्टांतों द्वारा सही सिद्ध हो जाएगी-

दृष्टांत १- प्रयागराज के निकट एक राजा था, जोकि पूर्ण

नीतिवान और अच्छा विद्वान था। इस राजा की शादी मदालसां नाम की कन्या से हुई। वह कन्या भी काफ़ी बुद्धिमान और पूर्ण विद्वान थी। विद्या और दैवीय गुणों में, वह अपने पति से भी श्रेष्ठ थी। गृहस्थ आश्रम के धर्म का पालन करने के लिए उसने एक दिन राजा को विनती की, हे पति देव ! आप मेरे लिए परमेश्वर रूप हो। मेरी एक विनती स्वीकार करो कि मेरी कोख (गर्भ) से जो भी बालक जन्म लेगा, वह दुबारा जन्म-मरण के चक्र में ना जाए इसलिए उस बालक के पालन-पोषण में आप किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं करेंगे और उसका पालन-पोषण मैं अपने अनुसार करूँगी। मेरी यह शर्त यदि आपको मंजूर हो तभी मैं गृहस्थ आश्रम में प्रवृत्त हो सकती हूँ। राजा ने सोचा कि रानी का वचन पुत्रों के लिए कल्याणकारी है और ठीक भी है, इसलिए उसकी बात मान ली। कुछ समय पश्चात् रानी मदालसां के घर एक पुत्र पैदा हुआ। रानी ने विचार किया कि बच्चे को किसी भी प्रकार से दुनियावी संस्कार न पड़ जाए, इसलिए उसने अपने विचारों से बनाई हुई यह लोरी उस बच्चे को प्रतिदिन सुनानी शुरु की-

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जतोऽसि।
संसार सुपना तजि मोह निद्रां मदालसां वाक्यं इम् उवाच पुत्रे।

तात्पर्य-हे पुत्र! तेरा असली स्वरूप शुद्ध, बुद्ध और निरंजन है अर्थात माया से रहित है। तुझे यह संसार रूपी एक सपना आया है और मोह रूपी नींद ने भी तुझे सताया है, इसलिए तू इस मोह रूपी नींद को त्याग दे। मदालसां रानी ने कहा हे मेरे पुत्र! मेरी यह बात निश्चय से सत्य करके जान ले! जब वह बच्चा पाँच वर्ष का हो गया, तो मदालसां ने बच्चे को कमंडल देकर जंगल में एक ऋषि के पास छोड़ दिया। ऋषि की शरण में रहकर उस बालक ने वेद-शास्त्र पढ़े

और परमेश्वर का नाम जपते-जपते ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। गत् कुछ वर्षों में रानी मदालसां के सात पुत्र पैदा हुए। उसने सातों पुत्रों की पालना इसी प्रकार से की। बच्चे के पैदा होते ही उसे वही लोरी सुनानी शुरु कर देती और पाँच वर्ष की आयु होने पर उसे जंगल में ऋषि के पास छोड़ आती।

इतने समय में राजा भी बूढ़ा हो गया। एक दिन राजा के मन में ख्याल आया कि रानी ने राज-गद्दी का अधिकारी बनाने के लिए कोई भी बालक नहीं छोड़ा तो राजा ने रानी से बात की कि मैंने तेरे साथ जो वचन किया था, वह मैंने पूरा किया है, इसलिए अब जो बालक पैदा होगा, उसे राज-पाट देकर हम अपनी शेष आयु परमेश्वर का भजन करने में सफल करें। रानी ने सोचा कि राजा की बात भी सच है। वह बोली कि मुझे आपकी आज्ञा मंजूर है, परंतु कोई ऐसी युक्ति सोचें कि मेरा प्रण भी पूरा हो जाए और आपकी इच्छा भी। जब आठवाँ बालक पैदा हुआ तो रानी ने उसे राज्य संभालने का काम सिखाया और साथ में एक युक्ति भी अपनाई। कागज़ पर एक उपदेश लिखकर सोने के तावीज़ में बंद करके छोटे पुत्र अलिरक की भुजा पर बाँध दिया और कहा, हे पुत्र! जिस समय तेरे ऊपर कोई भी संकट आए, तो इस तावीज़ को खोलकर पढ़ लेने से तेरा कष्ट दूर हो जाएगा। वह बालक जब राज्य संभालने योग्य हुआ, तो राजा और रानी अपने शेष जीवन को सफल बनाने के लिए वन में एक एकांत जगह पर रहने लगे। रानी वन में अपने सातों पुत्रों से भी मिली और उन्हें आज्ञा दी कि तुम्हें मेरा प्रण पूरा करना है। अपने छोटे भाई को भी अपने जैसा बना लेना। कुछ समय बाद राजा और रानी परलोक सिधार गए।

एक दिन सातों भाइयों ने माँ से किये प्रण को याद किया और

सोचा कि चलो, छोटे भाई को मिलें और देखें कि उसके मन की स्थिति कैसी है? ऐसा सोचकर सातों भाई, छोटे भाई के पास आए। कहने लगे हे भाई! तू स्वयं राजनीति में कुशल है। हम तेरे बड़े भाई हैं, इसलिए नीति की बात यह है कि सबसे बड़ा भाई राजगद्दी पर बैठे। यदि यह बात तुम्हें स्वीकार है तो हाँ कह दो, नहीं तो राज-पाट के आठ बराबर हिस्से करके एक-एक हिस्सा सबको दे दो। यह बात सुनकर छोटे भाई को थोड़ा दुख हुआ। उसने कहा कि मैं अच्छी तरह सोचकर कल सुबह आपको बता दूँगा। उसको राज्य का मोह था, इसलिए उसका मन बेईमान हो गया। उसने सोचा कि मैं इतने समय से सारे राज्य का काम संभाल रहा हूँ। अब इतना समय जंगल में रहने के बाद मेरे भाई मुझसे राज्य का हिस्सा माँगने आए हैं। राज-पाट में इनका कोई अधिकार नहीं बनता। सुबह होने पर उसने भाइयों को राज-पाट का हिस्सा देने से इंकार कर दिया और कहा कि आप यहाँ से चले जाओ, नहीं तो आपको जबरदस्ती निकलवाया जाएगा। वे सातों भाई ब्रह्मज्ञानी थे। उन्हें राज-पाट लेने की तो कोई इच्छा ही नहीं थी बल्कि वे तो छोटे भाई का उद्धार करने आए थे। जब उन्होंने देखा कि इसका राज-पाट में मोह है, तो उन्होंने सोचा कि इसे किसी प्रकार राज्य के मोह से छुड़वाकर ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनाएँ। उन्होंने एक अन्य राजा को, जो उन सातों भाइयों को अच्छी तरह जानता था, अपने मन की बात बताई। अतः उस राजा द्वारा अपने छोटे भाई पर आक्रमण करवा दिया। छोटे भाई ने पूरी ताकत लगाकर, उनका मुकाबला किया। दोनों तरफ के बहुत से सिपाही मारे गए। छोटे भाई ने देखा कि सामने शत्रु के सिपाही अधिक ताकतवर हैं, अगर मैं अब भी इनसे लड़ता रहा, तो मारा जाऊँगा। वह ऐसा सोच ही रहा था कि उसे अपनी माँ का वचन याद आया कि जब

भी तेरे ऊपर कोई संकट आ जाए तो भुजा के साथ बँधा यह कागज़ पढ़ लेने से तेरा संकट दूर हो जाएगा। ऐसा सोचकर कि इस युद्ध से बड़ा संकट और क्या आएगा, उसने कागज़ खोलकर पढ़ा, जिस पर लिखा था–

साध संगत है औषधि, कुसंग है काला नाग।
रहि न सके सत्संग कर, सरब संग परित्याग।।

तात्पर्य–सारे दुखों की दवाई साधुओं का संग है परंतु माया की खोटी संगत, काले नाग (सर्प) की तरह डंक मारती है। जब इस माया के दुख से छूटने का कोई उपाय नज़र न आए, तो संतों का संग करने से सब दुख दूर हो जाते हैं। इसलिए दुनियावी संगति से दूर रहकर केवल संत की संगति करो।

जब अलिरक ने यह पढ़ा तो उसके मन में उत्तम विचार आया और बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश हो गया। वह बहुत पछताने लगा कि मेरे भाई तो ब्रह्मज्ञानी और पूर्ण संत हैं, उन्होंने सच को पहचान लिया है और मैंने उनका अपमान किया है। उन्होंने जो कुछ भी मुझे कहा था, वह पूर्णतः सत्य था अतः मेरे उद्धार के लिए ही किया है। मैंने उनका अधिकार देने की बजाय उन्हें उल्टी-सीधी बातें सुनाईं। यह मुझसे एक बड़ा अपराध हो गया है। अब मेरी भलाई इसी बात में है कि रात के समय मैं छुप कर उनके पास जाऊँ और उनकी शरण ले लूँ। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई श्रेष्ठ उपाय मुझे नज़र नहीं आता। इस विचार से वह अपने महल से बाहर निकला और चुपचाप अपने भाइयों के पास पहुँचा। उनके पास पहुँचते ही वह बड़ी नम्रता से उनके चरणों में गिर पड़ा और विनती करने लगा, हे दयालुओ! मैंने आपका बहुत अपमान किया है। आप खुद चलकर मेरे घर आए परंतु मैंने आपका मान-सम्मान करने की अपेक्षा आपका अपमान

किया। अब मैं आप की शरण में आया हूँ, कृपा करके मुझे इस संसार के दुखों-क्लेशों से छुड़वा कर सच्चा सुख बख्श दें।

अलिरक की विनती सुनकर बड़े भाइयों ने उसके राज्य का प्रबंध उसके मन्त्री को सौंप कर उसे अपने साथ जंगल में ले गए। उसे ब्रह्मज्ञान का अधिकारी समझकर उपदेश दिया। जब उन्होंने अनुभव किया कि इसकी वृत्ति निरंतर परमेश्वर में लग चुकी है, तो उसे आज्ञा दी कि अब आप ममता रहित और असंग हो चुके हो। अब आप वापस जाकर अपना राज्य संभालो। उसने मोह-ममता छोड़कर अपने भाइयों की आज्ञा अनुसार राज्य चलाया। वह ऐसा पूर्ण संत और निर्मोही (मोह से रहित) हो गया कि उसने अपने परिवार और राज्य की सारी जनता को भी निर्मोही बना दिया।

दृष्टांत २- इस निर्मोही राजा का एक ही पुत्र था। उसे भी राजा ने वही शिक्षा दी कि जब भी तुझे कोई संत-महापुरुष मिले तो उसके दर्शन, सेवा करना और प्रभु का नाम जपते रहना। एक दिन यह राजकुमार घूमता-फिरता एक जंगल में गया और दूर से एक ऋषि की कुटिया देखकर उसके पास गया। उस ऋषि का नाम हरिदत्त था। राजकुमार ने ऋषि को नमस्कार करके आशीर्वाद माँगा। ऋषि ने उसे संत-सेवी जानकर प्रेम से आशीर्वाद दिया और पूछा कि बच्चा! तू किसका पुत्र है? इस जंगल में किसलिए आया है? राजकुमार ने उत्तर दिया कि मैं निर्मोही राजा का पुत्र हूँ और घूमता-घूमता इधर आ पहुँचा हूँ। मैं सौभाग्यशाली हूँ कि परमेश्वर ने आप जैसे महात्मा का दर्शन करवाया है। ऐसा सुनकर ऋषि ने कहा, हे बालक! कहाँ एक राजा और कहाँ एक निर्मोही! एक राजा, निर्मोही कैसे हो सकता है? इन दोनों बातों का मेल होना असंभव है। राजा तो सदैव ही मोह के अधीन होता है। निर्मोही राजा का पुत्र बोला, हे दयालु! यदि आपको

मेरी बात पर शंका है, तो आप स्वयं परीक्षा लेकर अपनी शंका दूर कर सकते हो। राजकुमार को वहीं रहने की आज्ञा देकर, ऋषि जी महाराज परीक्षा लेने के लिए राजा निर्मोही के राजमहल की ओर चल पड़े। राजा निर्मोही ने अपने सेवकों को आदेश दे रखा था कि यदि कोई भी साधु-महात्मा मुझसे मिलने आए तो उसे बिना रोक-टोक के मेरे पास ले आना। जब महात्मा राजमहल के द्वार पर पहुँचे तो द्वारपाल (दरबान) ने उन्हें महल के अन्दर भेज दिया। ऋषि जी अभी महल के अन्दर प्रवेश ही हुए थे कि उन्हें एक स्त्री दिखाई दी। वह समझ गये कि यह ही राजकुमार की दासी है। ऋषि कहने लगे, हे देवी! मैं तुझे एक दुखद घटना सुनाने के लिए आया हूँ, धैर्य रखकर सुनना! ऐसा कहकर ऋषि ने यह श्लोक उच्चारण किया-

तू सुणि चेरी श्याम की बाति सुनाऊँ तोहि।
कुँअर बिनासियो सिंह ने आसन परियो मोहि।।

तात्पर्य-राजकुमार को जंगल में एक शेर ने मार दिया है और वह मरा हुआ राजकुमार मेरे आसन पर पड़ा है।

दासी यह बात सुनकर रोने की बजाय धीरज रखकर बोली-

ना मैं चेरी श्याम की ना को मेरा श्याम।
प्रारबध वस मेल यह सुण ऋषि अभिराम।।

अर्थात हे ऋषि जी महाराज! ना मैं राजकुमार की दासी हूँ और ना ही वह मेरा स्वामी है। प्रारब्ध अर्थात पिछले कर्मों के फलस्वरुप ही हमारा मेल हुआ था। अब यदि इस मेल का समय समाप्त हो गया है, तो शोक किस बात का? जो भी दुखद घटना घटी है, सब ठीक ही है!

दासी की यह अवस्था देखकर ऋषि ने विचार किया कि यह तो आखिर एक दासी ही है, इसे राजकुमार की मृत्यु का क्या शोक होना

हुआ। तब ऋषि ने सोचा कि अब राजकुमार की पत्नी के पास चलकर देखूँ। ऐसा सोचकर ऋषि, राजकुमार की पत्नी के पास आकर बोला, हे रानी ! मुझे समझ नहीं आ रहा कि मैं तुझे किस मुँह से यह दुखभरी सूचना सुनाऊँ ? ऋषि ने कहा–

तूं सुन चातुर सुंदरी अबला जोबनवान।
देवी वाहन दलमलयो तुमरो श्री भगवान।।

तात्पर्य–हे चतुर, सुन्दर और यौवनवान राजकुमारी! तेरे पति को देवी के वाहन अर्थात शेर ने मार दिया है। मैं यह दुखदायी समाचार देने के लिए तुम्हारे पास आया हूँ। यह सुनकर रानी ने शोक मनाने की अपेक्षा ऋषि को ऐसा कहा–

तपीआ पूरब जनम की क्या जानत हैं लोग।
मिले करम वस आनि हम अब विधि कीन वियोग।।

तात्पर्य–हे तपस्वी! ये सब पिछले जन्मों का फल है, जिसे हम भोग रहे हैं। संसार के लोगों को इस बात का क्या ज्ञान है? कर्मों के वश में होने के कारण हमारा आपस में मेल हुआ था। अब यदि विधाता (परमेश्वर) ने वियोग (बिछोड़ा) कर दिया है, तो इसके लिए चिन्ता किस बात की करनी है? इसलिए हे ऋषि! आप भी इस घटना की चिन्ता मत करो। जो कुछ भी हो गया है, सब ठीक ही है। परमात्मा हमेशा भला (अच्छा) ही करता है।

यह सुनकर ऋषि ने समझा कि यह रानी अभी छोटी आयु की है, इसे पति-प्रेम की पूरी समझ नहीं है इसलिए राजकुमार की माता के पास जाकर उसकी परीक्षा लूँ क्योंकि माँ का पुत्र के प्रति अधिक मोह होता है। इस विचार से ऋषि, महारानी के पास गया और बोला, हे महारानी! मैं किस मुँह से तुझे यह दुखभरी बात सुनाऊँ? मेरी जिह्व से यह दुखभरी घटना बताई ही नहीं जा रही?

यह बात सुनकर महारानी ने कहा, हे ऋषि ! आप किसी प्रकार का कोई भी ख्याल मन में न लाएं और जो कुछ भी है बिना संकोच के सुनाएं। तो फिर ऋषि बोले-

रानी तुम को बिपत अति सुति खाइओ मृगराज।
हमने भोजन ना कीओ इस मृतक के काज ।।

तात्पर्य-हे महारानी! आप के ऊपर बड़ा भारी संकट आ पड़ा है। आपके पुत्र को शेर ने खा लिया है, इसलिए प्यारे राजकुमार की मृत्यु के दुखः कारण अभी तक मैंने भी भोजन नहीं किया।

ऐसा सुनकर महारानी ने ऋषि को कहा- हे ऋषि! आप शोक मत करो। जो कुछ भी हो रहा है, परमेश्वर स्वयं ही कर रहा है और हम सब की भलाई के लिए ही है। इसलिए हम सभी को उसकी आज्ञा में ही रहना चाहिए। इस बात को महारानी ने ऐसे कहा-

एक बिरख डाली घने पंखी बैठे आए।
पहु पाटी पीही भई उड़-उड़ चहुँ दिसि जाए।।

तात्पर्य-हे ऋषि! इस जगत का व्यवहार (चलन) ऐसा है जैसे कि किसी पेड़ की टहनियों पर अनेक पक्षी आकर रात को आराम करते हैं और प्रातः होते ही सभी अपना-अपना रास्ता पकड़कर चारों दिशाओं में उड़ जाते हैं। इसलिए मेरा और मेरे पुत्र का मिलाप भी इसी प्रकार का ही समझो।

ऋषि हैरान हो गया और सोचने लगाा कि अब राजा की अवस्था भी परख लूँ। ऋषि, राज दरबार में आकर राजा को कहने लगा कि हे राजन! मैं आपको एक बड़ी दुखदायी खबर बताने के लिए आया हूँ। सुनो-

राजा मुख ते राम कहो पल-पल घड़ी-घड़ी।
सुत खाइयो मृगराज ने परिओ हमारे मढ़ी।।

तात्पर्य–हे राजन ! तू स्वास-स्वास मुख से राम-राम बोल। तेरे पुत्र को शेर ने मार दिया है और वह मेरे स्थान (कुटिया) पर मरा हुआ पड़ा है।

ऐसा सुनकर राजा को शून्य मात्र भी दुख ना हुआ और वह अडोल-चित्त रहा। राजा ने ऋषि से कहा, हे ऋषि ! तू इस बात की कोई चिंता न कर। राजा बोला-

तपिया तप क्यों छाडिओ ईहां पल नाहीं सोग।
वासा जगत सरांय में सभी मुसाफ़िर लोग।।

तात्पर्य–हे तपस्वी! मैं तुझे देखकर बड़ा हैरान हुआ हूँ कि तू अपनी तपस्या छोड़कर मेरे पास आया है। आप देखते ही होंगे कि मुझे ज़रा-सा भी शोक नहीं है। वास्तव में यह संसार तो सराय (मुसाफ़िरखाना) है और सभी जीव इसमें मुसाफ़िर की तरह ही रह रहे हैं। जैसे हर एक मुसाफ़िर सवेरा होते ही सराय से निकल पड़ता है, वैसे ही मेरा पुत्र भी ज़िंदगी रूपी रात गुजारकर, परलोक सिधार गया है। इस तरह राजा की अडोल वृत्ति देखकर ऋषि चकित रह गया और सोचने लगा कि सचमुच ही राजा 'निर्मोही' है, जो अपने पुत्र की मौत की खबर सुनकर भी दुखी नहीं हुआ। इसके ऊपर तो परमात्मा की बहुत कृपा है। जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है-

क्या राजा क्या रंक है तपी भवन को वास।
जिस ऊपर प्रभु किरपा करे ता के रिदे प्रकास।।

तात्पर्य–राजा हो या रंक, तपस्वी हो या गृहस्थी, जिसके ऊपर प्रभु कृपा करता है, उसके हृदय में ही आत्मज्ञान का प्रकाश होता है। उसी समय ऋषि ने राजा निर्मोही के बारे में यह कहा-

धंन हो राजा धंन तुम धंन तुमारा देस।
धंन तुमारा सतिगुरु जिन तोहि कीओ उपदेस।।

तात्पर्य–हे राजन! तू धन्य है, तेरा देश भी धन्य है और तेरा सतगुरु भी धन्य है, जिसने तुझे ऐसा उपदेश दिया है। हे राजन ! मैं तो तेरी परीक्षा लेने के लिए आया था क्योंकि तेरे पुत्र ने मुझे तेरा नाम 'निर्मोही' बताया था। मुझे एक राजा के 'निर्मोही' होने पर किंचित भी विश्वास नहीं आया था परंतु अब सब कुछ देखकर मालूम पड़ा कि एक तू ही निर्मोही नहीं बल्कि तेरा सारा परिवार ही निर्मोही है। अब आप यह खबर खुशी से सुनो कि आपका पुत्र जीवित है और मेरे स्थान (कुटिया) पर सुरक्षित बैठा है। जो भी मैंने आपके बारे में सुना था, सचमुच वही देखा है। मैं तुम पर बड़ा खुश हूँ। आपकी सदा जय हो!

तत्पश्चात वह तपस्वी, राजा को आशीर्वाद देकर अपने स्थान की ओर चला गया। कुटिया के नज़दीक पहुँचकर ऋषि को ख्याल आया कि राजकुमार की परीक्षा भी तो लेनी चाहिए! अतः वहाँ पहुँचते ही उसने राजकुमार को यह श्लोक सुनाया–

सुन नृप नंदन बात मम महां सोक की खाण।
निकसे पीछे युद्ध में भई तउ कुल की हान।।

तात्पर्य–हे राजकुमार! एक बहुत दुख भरी घटना सुन। मैं तुम्हारे पिता के राज्य में गया था। वहाँ समाचार मिला कि किसी शत्रू ने तुम्हारे राज्य पर आक्रमण कर दिया और राजा को कैद करके उसकी हत्या कर दी। तेरी माता चिता में जल कर सती हो गई है और बाकी सारा परिवार और घर आदि भी सभी नष्ट हो चुका है।

यह दुखद समाचार सुनकर भी राजकुमार अचिन्त रहा। ऋषि की इस सूचना के विपरीत अपनी प्रतिक्रिया का वर्णन यूँ किया–

1. **इक दिन लोक कुटंब से विछड़िया कर होए।**
ता ते हम पहिले तजे शोक ना करहूँ कोए।।

2. **चलते मारग एक में मिलियो बटाऊ को वास।**
   भावें अभी विछड़े भावें कोस पचास।।
3. **तीन दिनों के जीवते जैसे सुपन विलास।**
   बिरथा ही सभ अरंभ है सुख भोगन की आस।।
4. **क्या कहीए क्या जोड़ीए थोड़े जीवन काज।**
   छोड़-छोड़ सब जात है वपु घर धन कुल राज।।
5. **बंधिआ पुत्र वियोग के मानत है दुख जान।**
   वार-वार पच मरत कुंभी पात महि तान।।

तात्पर्य-हे ऋषि ! हम सबने एक दिन अपने कुटंब से बिछुड़ जाना है, इसलिए मैंने उसे पहले से ही त्याग दिया है, तो फिर शोक क्यों करूँ? मान लो रास्ते में चलते हुए मुझे कोई और यात्री मिल जाए और मिलते ही बिछुड़ जाए या थोड़ा आगे चलकर बिछुड़ जाए, तो उसका मुझे क्या दुख? थोड़ा-सा समय जीने के लिए, इस संसार के भोग-पदार्थों की आशा में सारी आयु व्यर्थ चली जाती है और ये पदार्थ वास्तव में स्वप्न में दिखाई देने वाली वस्तुओं की तरह झूठे हैं। इसलिए मैं क्या कहूँ? क्योंकि मैं देखता हूँ कि हर कोई अपना तन, धन, घर, कुल (वंश) और राज्य छोड़कर चला जाता है। जैसे कोई बांझ (संतानहीन) स्त्री पुत्र के बिछुड़ जाने का दुख करे (जोकि उसके पास था ही नहीं), वैसे ही मेरा दुख समझें। जैसे उस स्त्री को पुत्र के बिछुड़ने का कोई दुख नहीं होता, वैसे ही मुझे कोई दुख नहीं है। इस संसार रूपी कुंभी नरक में जीव बार-बार 'पच' अर्थात मर रहा है।

राजकुमार की यह अवस्था देखकर ऋषि बहुत प्रसन्न हुआ। ऋषि ने राजकुमार को प्रेम से गले लगाया। ऋषि बोला कि हे राजकुमार! तू, तेरा पिता और तेरा सारा परिवार भी धन्य है, जोकि ऐसी अडोल स्थिति में हो। परमेश्वर तुम्हें सदा खुश और आबाद रखे!

गुरुमुख पुरुष ऐसी जुगति यानि विधि से इस संसार के मोह रूपी दुख से रहित होकर अपना अमूल्य समय परम आनंद में बिताते हैं और जीवन-मुक्त अवस्था को प्राप्त होते हैं। यही है *गुरमुखि जुगता* ।।

प्रश्न 3. कउणु सु गिआनी।। ज्ञानी कौन है?

उत्तर-गुरमुखि गिआनी।। अर्थात गुरुमुख ही ज्ञानी है। संस्कृत में ज्ञान शब्द का अर्थ है 'जानना'। जिस प्राणी ने सत्य और असत्य का विचार करके यह अच्छी तरह से जान लिया कि ब्रह्म ही सत्य है और इसके अतिरिक्त शेष सब कुछ झूठ है, उसे ही गिआनी (ज्ञानी) कहते हैं। प्रश्न वाली पंक्ति में गिआनी शब्द से गुरु जी का तात्पर्य है ब्रह्मज्ञानी। अब प्रश्न यह है कि ब्रह्मज्ञानी है कौन इसके उत्तर में गुरु साहिब स्वयं बता रहे हैं कि जो गुरुमुख होगा, वही ब्रह्मज्ञानी हो सकता है। इसके अतिरिक्त इस उत्तम पदवी को प्राप्त करने का और कोई भी उपाय नहीं है। परंतु ब्रह्मज्ञानी किसे कहना चाहिए और ब्रह्मज्ञानी के क्या लक्षण (पहचान) हैं? इस विचार को समझने के लिए श्री सुखमनी साहिब की आठवीं अष्टपदी में बड़े सरल तरीके से समझाया गया है। यहाँ पूरी अष्टपदी के विचार को नहीं लिखा जा रहा। ऊपर वाले प्रश्न का भाव-अर्थ समझने के लिए केवल श्लोक के अर्थों का ही विचार किया जा रहा है-

सलोकु ।।

मनि साचा मुखि साचा सोइ।।

अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ।।

नानक इह लछण ब्रहम गिआनी होइ।।१।। (अंग २७२)

नौवें पातशाह श्री गुरु तेग बहादुर साहिब जी ने भी अपनी वाणी में उच्चारण किया है-

हरखु सोगु जा कै नही बैरी मीत समानि।।

कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि।।५।।
भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आन।।
कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखानि।।६।।

(अंग १४२७)

इस आध्यात्मिक अवस्था अर्थात गिआनी (ज्ञानी) की ऊपर लिखे गए लक्षणों वाली अवस्था को स्पष्ट रुप से सिद्ध करने के लिए एक ब्रह्मज्ञानी संत जी की कथा इस प्रकार से है-

एक ब्रह्मज्ञानी, शाँत चित्त महात्मा किसी शहर के एक बगीचे में रहते थे। एक दिन उस बगीचे में खेल रहे कुछ शैतान स्वभाव वाले लड़कों ने आपस में मिलकर इस साधु को तंग करने की सलाह की। महात्मा जी की ऊँची आध्यात्मिक अवस्था से अनजान वे शरारती लड़के मस्ती में आकर संत जी को छोटे-छोटे पत्थर मारने लगे परन्तु महात्मा जी शाँत और अडोल-चित्त बैठे रहे। दुर्भाग्य से एक बड़ा पत्थर महात्मा जी को लग गया, जिसके कारण उनके शरीर में से खून बहने लगा। ऐसा देखकर वे लड़के डरकर बगीचे में से बाहर भाग गए। थोड़ी देर बाद एक संत-सेवी सज्जन पुरुष वहाँ से गुज़रा और महात्मा जी का यह हाल देखकर वह जल्दी से एक हकीम को बुला लाया। संत जी के घाव पर मरहम-पट्टी करवाई और दवाई देने के पश्चात दूध आदि पिलाया। यह सूचना सुनते ही उस शहर का राजा महात्मा जी के पास पहुँच गया। उसने महात्मा के चरणों में मस्तक झुकाया और विनती की, हे स्वामी जी! कृपा करके मुझे बताओ कि आप को पत्थर किसने मारा है? मैं चाहता हूँ कि उस दोषी को पूरा दण्ड मिले और जिस भले पुरुष ने आप जी की सेवा की है, उसको पुरस्कार देकर हौसला बढ़ाया जाए। ऐसा सुनकर ब्रह्मज्ञानी संत चुप और शाँत ही रहे। तब राजा ने फिर बड़े सत्कार

के साथ विनती करते हुए कहा कि हे दयालु! कृपा करके मुझे बताएं कि आप को किसने तंग किया है ताकि मैं उस दोषी को दण्ड दूँ। अगर मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता और दोषियों को दण्ड नहीं देता, फिर तो मेरे राज्य की बहुत बुरी दशा हो जाएगी। तब महात्मा बोले, हे राजन! जिसने मुझे पत्थर मारा है, उसी ने मुझे दूध पिलाया है। यह सुनकर राजा ने पूछा कि आप जी को दूध किसने पिलाया है? तो संत जी ने उत्तर दिया कि जिसने मुझे पत्थर मारा है, उसने ही मुझे दूध पिलाया है। इससे सिद्ध हुआ कि उस महात्मा की अवस्था समदृष्टि वाली थी। वह ब्रह्मज्ञानी महात्मा सब में एक प्रभु को ही देख रहा था।

राजा ने संत की ऐसी ऊँची अवस्था देखकर श्रद्धा के साथ विनती की, हे दयालु, कृपालु महाराज जी! कृपा करके मेरा मार्गदर्शन करो और मुझे भी कोई ऐसा उपदेश दो, जिससे मेरे राज्य में पाप कर्म न बढ़े, प्रजा में शाँति रहे और सब लोग धर्मात्मा और अच्छे आचरण वाले हों। महात्मा जी ने अपनी ब्रह्मज्ञान वाली अवस्था के अनुसार राजा को यह उपदेश दिया कि हे राजन! तू वर्ष का कोई एक दिन निश्चित कर ले, जिस दिन तू और तेरी प्रजा मिलकर हरि-कीर्तन, सत्संग और सत्शास्त्रों के अमृत वचनों का विचार किया करें। इस प्रकार सब के मन को शाँति मिलेगी और आप तथा आपकी प्रजा सुखी बसेगी। संतों के वचन मान कर राजा ने ऐसा ही किया। उसके देश में धर्म-कर्म का प्रचार बढ़ा और प्रजा सुखी रहने लगी। सत्संग के फलस्वरुप वहाँ के लोग पाप कर्मों और अधर्म से दूर रहने लगे। यह है ब्रह्मज्ञानी महापुरुष के जीवन का लक्षण, जिसकी कृपा दृष्टि से सब का भला ही हुआ। ब्रह्मज्ञानी कभी भी, किसी का कुछ भी बुरा नहीं करता। श्री सुखमनी साहिब की आठवीं अष्टपदी

में फरमान है –

ब्रहम गिआनी की सभ ऊपरि मइआ ।।

ब्रहम गिआनी ते कछु बुरा न भइआ ।। (अंग २७२)

गुरुमुख, गिआनी ऐसी अवस्था के मालिक होते हैं जैसा कि ऊपर लिखी कथा के माध्यम से बताया गया है। गिआनी के बर्ताव और दयालुता से सब का भला होता है। ऐसी अवस्था केवल गुरुमुखों को ही प्राप्त होती है जोकि हर प्राणी के प्रति समदृष्टि रखते हैं। यही है *गुरमुखि गिआनी* ।।

प्रश्न 4. कउणु सु बकता।। यथाः बोलकर (वाणी द्वारा) उपदेश देने वाला कौन होता है?

उत्तर–गुरमुखि बकता।। भाव गुरुमुख ही बोलकर उपदेश देने वाला होता है।

व्याख्या–किस परिस्थिति में किस प्रकार के शब्दों का उपयोग करना चाहिए और उस वाणी में कितनी शक्ति है, ये सब गुरुमुख पदवी को प्राप्त हुए महापुरुष के जीवन से ही मालूम पड़ता है।

वाणी चार प्रकार की है– 1. **परा** 2. **पशंती** 3. **मध्यमा** 4. **बैखरी**

1. परा – अजपा–जाप यानि जिस समय ख्याल (स्फुरण) बिल्कुल सूक्ष्म हो और किसी दूसरे को मालूम भी न पड़े कि वह प्राणी जाप कर रहा है या नहीं।

2. पशंती–जिस समय केवल यही मालूम हो कि वह प्राणी चुपचाप कुछ पढ़ रहा है।

3. मध्यमा–वह वाणी जो कंठ (गले) से होठों तक आए परंतु मुँह से बाहर न निकले।

4. बैखरी–जिस वाणी से धवनि उत्पन्न हो और दूसरों को भी सुनाई दे।

प्रतिदिन दूसरों से बातचीत या चर्चा करने, गाना गाने, भाषण देने और ऊँची आवाज़ से पुकारने में बैखरी वाणी का विशेष महत्त्व है। जैसे कि यदि कोई नेत्रहीन व्यक्ति सड़क पर पैदल जा रहा हो और कोई नेत्रों वाला व्यक्ति ऊँची आवाज़ में उसे कहे, भाई, सावधान! आगे गड्ढा है। ऐसे बैखरी वाणी सुनकर वह नेत्रहीन प्राणी गड्ढे में गिरने से बच जाएगा। इसी प्रकार यदि जंगल में कोई व्यक्ति मार्ग भूल जाए तो उसे ऊँची आवाज़ में पुकारने से वह ठीक मार्गे पर आ जाता है। इसका महत्व श्री गुरु नानक देव जी ने जपुजी साहिब में इस प्रकार लिखा है-

करम खंड की बाणी जोरु।। तिथै होरु न कोई होरु।।

(अंग ८)

तात्पर्य-करम अथवा बख्शीश। बख्शे हुए प्राणी जिन्हें हम संत-महापुरुष कहते हैं, उनकी वाणी 'जोरु' यानि ताकत (शक्ति) वाली होती है। उनकी वाणी के प्रताप को विराम देने की शक्ति किसी दूसरे में नहीं होती। 'सूरज प्रकाश' ग्रंथ में यह दृष्टांत लिखा है-

दृष्टांत १- लाहौर शहर में बुद्धू शाह नाम का एक सिख रहता था। उसने बहुत पैसे ऋण लेकर ईंटें पकाने के लिए एक भट्ठा लगाने का विचार किया। काम शुरु करने से पहले वह श्री गुरु अर्जन देव जी के दर्शन करने व आर्शीवाद लेने के लिए श्री हरिमंदिर साहिब अमृतसर आया। दर्शन स्नान करके श्री गुरु साहिब जी के पास पहुँचा। नमस्कार करके विनती की, हे दीन दयालु! कृपा करके आर्शीवाद दो कि मेरा काम सफल हो जाए। मेरे ईंटों के भट्ठे अच्छी तरह पककर तैयार हो जाया करें ताकि वो पक्की ईंटें पूरे दाम में बिक जाया करें। गुरु जी ने फुरमाया, हे भाई बुद्धू! तेरे भट्ठे जरूर पक जाया करेंगे, परंतु यह बात याद रखना कि जब भट्ठे पक जाएँ तो

आवे (भट्ठे में डाली गई ईंटों के ढेर) खोलने से पहले साधु-संगत को गुरु का लंगर प्रसाद ज़रूर खिलाना।

यह आर्शीवाद लेकर भाई बुद्धू शाह अपने घर लाहौर लौट आया और ईंटें पकाने का कार्य शुरु कर दिया। जब आवे (ईंटों के ढेर) पककर तैयार हो गए, तो उसने गुरु साहिब की आज्ञा के अनुसार संगत के लिए लंगर आदि तैयार किया। सब को प्यार और सत्कार से गुरु का लंगर खिलाया। जब सारी संगत लंगर खाकर चली गई, तो बाद में एक प्रेमी सिख भाई लख्खू जो वास्तव में गुरुमुख पदवी को प्राप्त हो चुका था, लंगर-प्रसाद छकने (खाने) के लिए आया। उसे देर से आया कोई भिखारी समझकर भाई बुद्धू शाह ने क्रोधित होकर कहने लगा कि अब तो लंगर खत्म हो गया है, जा! चला जा! भाई लख्खू ने फिर विनती की, हे भाई! मैं बहुत भूखा हूँ, मुझे गुरु के लंगर में से कुछ प्रसाद ज़रूर खिलाओ। परन्तु फिर भी बुद्धू शाह बात को अनसुना करके और उससे मुँह मोड़कर अंदर चला गया। इसके बाद भाई लख्खू (गुरुमुख) ने सहजे ही वचन किया कि अगर मुझे प्रसाद नहीं खिलाया, तो तुम्हारे आवे (ईंटों के ढेर) भी नहीं पकेंगे। भाई बुद्धू शाह ने इस बात पर भी कोई ध्यान न दिया, क्योंकि उसे भरोसा था कि गुरु साहिब जी से बड़ा तो कोई हो ही नहीं सकता, जिसके कहने से कि मेरे आवे कच्चे रह जाएँगे। समय अनुसार जब आवे खोले गये तो भाई बुद्धू शाह ने जाकर देखा कि भट्ठे में से सब ईंटें कच्ची ही निकल रही हैं। यह देखकर भाई बुद्धू शाह परेशान हो गया। श्री गुरु अर्जन देव जी महाराज के पास पहुँचा और पूरी घटना सुनाई। गुरु साहिब ने फरमाया कि हे भाई! तूने लंगर खाने के लिए आए एक गुरुमुख सिख को अपने घर से निराश करके भेजा है, उसे लंगर नहीं खिलाया। उस गुरुमुख के वचन को टालने

की ताकत तो मुझ में भी नहीं है। भक्त नामदेव जी का गुरुवाणी में फरमान है–

मेरी बांधी भगतु छडावै बांधै भगतु न छूटै मोहि।।
एक समै मो कउ गहि बांधै तउ फुनि मो पै जबाबु न होइ।।
(अंग १२५२)

तात्पर्य–जिसे मैं अपने वचन द्वारा बाँध दूँ, उसे मेरा भक्त तो छुड़ा सकता है परंतु भक्त के वचनों द्वारा बाँधे हुए को, मैं नहीं छुड़ा सकता। यदि कोई भक्त मुझे प्रेम की डोरी से बाँध ले, तो मैं भी उस प्रेम के बंधन से छूट नहीं पाता।

यह बात सुनकर बुद्धू शाह बहुत पछताया। गुरु साहिब से माफ़ी माँगी और विनती की, हे कृपा निधान! हे दयालु! हे बख्शीशों के मालिक! किसी भी तरह से मेरा काम ठीक करें। मैंने भट्ठे लगाने के लिए बहुत धन ऋण लेकर खर्च किया है। कृपया मुझ गरीब पर दया करके मेरा काम सँवार दें! गुरु साहिब ने वचन किया, हे भाई! गुरुमुख का वचन टलने वाला नहीं होता। इसलिए तुम्हारे भट्ठे की ईंटें अब पकेंगी नहीं, परंतु तेरी इतनी ज्यादा विनती करने पर हम यह वचन करते हैं कि तेरी कच्ची ईंटें, पक्की ईंटों के भाव में बिक जाएँगी। ये वचन सुनकर बुद्धू शाह संतुष्ट होकर वापस लाहौर आ गया। प्रकृतिवश उस साल बहुत अधिक वर्षा हुई जिसकी वजह से लाहौर के बादशाह का किला टूट गया। उस किले को दुबारा बनवाने के लिए बादशाह ने बहुत सारे मिस्त्री और मज़दूर लगा दिए। इस कारण ईंटों की माँग बहुत बढ़ गई। माँग इतनी बढ़ गई कि सारे शहर के भट्ठों की पक्की ईंटें खत्म हो गईं। उधर बादशाह का हुक्म था कि ईंटों का प्रबंध जल्दी हो, क्योंकि किला जल्दी बनाना था। माँग पूरी न होती देखकर बादशाह के आदमियों ने भाई बुद्धू शाह की जो

कच्ची ईंटें थी, वह सब पक्की ईंटों के दाम में खरीद लीं। इस तरह गुरुमुख का वचन भी अटूट रहा और बुद्धू शाह को ईंटों के पूरे दाम भी मिल गये। यह हैं गुरुमुख के शक्ति भरे वचन।

दृष्टांत २– एक नेत्रहीन प्राणी किसी जंगल में रहता था। एक दिन उस देश का राजा शिकार करने के लिए जंगल की ओर निकला। राजा हिरन को देखकर उसके पीछे दौड़ा परंतु वह हिरन राजा से बहुत आगे निकल गया। हिरन का पीछा करते हुए राजा अपने मंत्री (वज़ीर) और नौकरों से बिछुड़ गया। वह राजा जहाँ से गुज़र रहा था, वहीं एक नेत्रहीन बैठा था। उसे देखकर राजा ने पूछा कि हे आँखों से सुजान पुरुष! कृपा करके बताइए कि आपको इस ओर हिरन के दौड़ने की आवाज़ सुनाई दी थी? उस नेत्रहीन ने कहा कि हे राजन! यहाँ से एक बूढ़ा हिरन जंगल की ओर गया है। यह सुनकर राजा आगे चला गया। कुछ समय बाद उस राजा का मंत्री भी उसी नेत्रहीन के पास पहुँचा और पूछा कि हे नेत्रहीन प्राणी! इधर से कोई घुड़सवार गया है? सूरदास ने कहा कि हे मंत्री! राजा कुछ समय पहले ही यहाँ से गुज़रा है। यह सुनकर मंत्री ने अपना घोड़ा उस दिशा की ओर दौड़ाया। उसके जाने के कुछ समय पश्चात कोतवाल भी वहीं आ पहुँचा और उसने नेत्रहीन व्यक्ति से पूछा कि ओ अंधे! इधर से कोई घुड़सवार गए हैं? सूरदास ने उत्तर दिया कि हां, कोतवाल! इधर से राजा और मंत्री जंगल की ओर गए हैं।

आगे जाकर राजा, मंत्री और कोतवाल जब एक जगह पर इकट्ठे हुए, तो राजा ने अपने साथियों को बताया कि मैं बहुत हैरान हूँ कि हमारे रास्ते में बैठे सूरदास को कैसे पता लगा कि मैं राजा हूँ और हिरन बूढ़ा है तथा हिरन इस ओर गया है? राजा की यह बात सुनकर मंत्री ने भी सूरदास के साथ हुई सारी बात सुनाई। उसी

प्रकार की बात कोतवाल ने भी राजा और मंत्री को सुनाई। अंत में वो तीनों ही सूरदास के पास वापस आ गए। आकर पूछने लगे कि भाई! आपने हमें कैसे पहचाना कि हम में से एक राजा, एक मंत्री और एक कोतवाल है? सूरदास ने कहा कि मैंने आप सब के बातचीत करने के सलीके से पहचाना कि आप किस-किस उपाधि के मालिक हैं। हर एक व्यक्ति अपनी-अपनी उपाधि के अनुसार ही बात-चीत करता है। यदि कोई व्यक्ति अच्छी संगति के कारण ऊँची पदवी पर पहुँच जाता है, तो वह बहुत नम्रता के साथ बात-चीत करता है। राजा का बात करने का सलीका प्रभावशाली था। जब उसने हिरन के बारे में पूछा तो उसकी वाणी से मैं समझ गया कि बात करने का यह ढंग किसी राजा का ही हो सकता है। फिर राजा ने पूछा कि आपको हिरन के बूढ़े होने का कैसे मालूम हुआ? उसने कहा कि जवान हिरन तो छलाँगें मार-मार कर जाता है परंतु उस हिरन के दौड़ने के समय उसकी हड्डियों की आवाज़ आ रही थी और मैं समझ गया कि वह बूढ़ा है। उसके बाद मंत्री आया जिसकी बोली राजा की अपेक्षा कुछ कम नम्रता वाली थी। जैसे राजा के बाद मंत्री ही होता है, उससे मैंने अंदाजा लगाया कि यह मंत्री है। इस प्रकार कोतवाल के बोलने का ढंग कुछ और भी रूखा और तेज था जिससे मैं समझा कि यह तो राजा का कोई साधारण अधिकारी ही होगा क्योंकि बात करने का ऐसा व्यवहार छोटे अधिकारीयों का ही होता है।

संसार में कोई भी प्राणी पहले से ही योग्य या अयोग्य नहीं होता। 'जैसी संगत वैसी रंगत' अर्थात अच्छी संगति का प्रभाव अच्छा और बुरी संगति का प्रभाव बुरा पड़ता है। जिसे प्राणी को कोई योग्य पुरुष मिल जाए, वह अच्छी संगति मिल जाने के कारण अच्छा हो जाता

है और उसकी बोल-वाणी में भी सुधार हो जाता है। जो कोई जड़ी-बूटियों की परख करने वाला प्राणी जब किसी जंगल में पहुँचता है, तो बूटियों के गुणों का सही प्रयोग करने के लिए, उन्हें घर ले आता है और उन्हें दूसरों की भलाई के लिए उपयोग करता है। इसी तरह सत्संगी प्राणी शब्दों या अक्षरों का ठीक प्रयोग करने का ढंग सीख जाता है। शब्दों को सही जगह पर प्रयोग करने का ढंग सीखने के कारण वह इंसान अच्छे व्यवहार के योग्य हो जाता है। यह है 'बैखरी' वाणी का प्रताप जोकि श्री कृष्ण भगवान ने श्रीमद् भगवत गीता के सत्तारहवें अध्याय में वर्णन किया है कि हे अर्जुन! किसी भी प्राणी के प्रति कभी भी दुख देने वाला या मन दुखाने वाला वचन नहीं कहना चाहिए और मधुर बोलना चाहिए। किसी संत-महापुरुष ने बड़ा सुन्दर लिखा है-

सीतल वचन उचारीए हनता हानीए नाहि।
तेरा प्रीतम तुझे माहि दुशमन भी तुझ माहि।।
कुटल वचन सभ ते बुरा जाल करे तन छार।
साधु वचन जल रूप हैं बरसै अमृत धार।।

तात्पर्य-सदैव शीतल, शाँत, कोमल और मीठे वचन बोलने चाहिएं। अहंकार से भरे हुए कटू वचन बोलकर दूसरों की हानि नहीं करनी चाहिए। इस तरह सज्जन और दुश्मन तेरे अंदर ही हैं। मन को दुख देने वाले शब्द, संबंधित व्यक्ति के हृदय को जला देते हैं और वह तेरे शत्रु बन सकते हैं। साधु के वचन निर्मल जल की तरह कोमल, शीतल और अमृत के समान होते हैं। ऐसे श्रेष्ठ वचन बोलने से अपने हृदय के अंदर भी शाँति रहती है और बाहर समाज के लोगों के साथ भी सज्जनता पैदा होती है। यह हैं गुरुमुख व्यक्ति के बोल जिनके बारे में गुरु साहिब जी ने फरमाया है-*गुरमुखि बकता* ।।

प्रश्न 5. कउणु सु गिरही अर्थात गृहस्थी कौन है?

उत्तर-धंनु गिरही-भाव यह है कि गुरुमुख ही सच्चा गृहस्थी है।

व्याख्या-धर्म शास्त्रियों ने मनुष्य के पूरे जीवन को चार भागों (आश्रमों) में बाँटा है।

1. ब्रह्मचारी 2. गृहस्थ 3. वानप्रस्थ 4. सन्यास।

इनमें से गृहस्थ आश्रम को सर्वोत्तम माना जाता है क्योंकि यह आश्रम अन्य तीनों का मूल आधार है और यह अन्य गृहस्थ आश्रम पर आश्रित होते हैं। परंतु यह गृहस्थ आश्रम तभी उत्तम होगा, यदि इसमें जीव गुरुमुख अर्थात निर्मोही, निर्लेप और असंग होकर रहे और वही अनासक्त (लगाव/ मोह से रहित) गुरुमुख गृहस्थी धन्य कहलाने के योग्य है। अनेक गृहस्थी जन जल में कमल फूल की तरह निर्लेप (असंग) अवस्था वाले गुरुमुख हुए हैं जिनके अनेक उदाहरण शास्त्रों में मिलते हैं।

दृष्टांत १- किसी जंगल में जाजलीक नाम का एक ऋषि रहता था। उसे तपस्या करते हुए इतना ज्यादा समय बीत चुका था कि उसकी जटाओं में पक्षियों ने घोंसले बना लिए थे। दुर्भाग्य से उसे महान तपस्वी होने का अहंकार हो गया था और उसका मन अशाँत रहने लगा। एक बार उस ऋषि को आकाशवाणी हुई कि हे ऋषि! जब तक तुझे अभिमान है, तब तक तुझे मन की शाँति प्राप्त नहीं होगी इसलिए तू फलां (अमुक) शहर में जा! वहाँ तुलाधार नाम का एक बनिया रहता है, उसकी शरण लेने से तेरा मन शाँत होगा। यह दैवीय वाणी सुनकर जाजलीक ऋषि उस शहर की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर लोगों से पूछता हुआ वह तुलाधार बनिये की दुकान पर पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उसने क्या देखा कि वह साधारण दुकानदारों की तरह बैठा हुआ, ग्राहकों को सौदा दे रहा था। यह

देखकर ऋषि के मन में शंका पैदा हुई कि यह बनिया तो प्रवृत्ति (दुनियादारी) में फँसा हुआ है। यह मुझे क्या उपदेश करेगा? मैं तो निवृत्ति (संसार से दूर) में रहकर भजन-बंदगी और जप-तप इत्यादि साधन करने वाला, इससे उत्तम साधक हूँ। ऋषि अभी इस तरह का विचार कर ही रहा था, तो तुलाधार ने उसके मन की बात जान ली और उसे अपने पास बुलाया। यथायोग्य सम्मान करके ऋषि को आसन पर बिठाया और उसे भोजन खिलाकर उसके चरणों में बैठ गया। तुलाधार ने ऋषि के मन का सारा हाल उसे सुना दिया। जाजलीक ऋषि हैरान हो गया और सोचने लगा कि इस को मेरे मन की बात कैसे पता चल गई? ऋषि ने तुलाधार से पूछा कि तुझे यह अवस्था कैसे प्राप्त हुई है? तुलाधार ने कहा कि मैंने कोई तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दान-पुण्य और तपस्या आदि साधन नहीं किए। हक-हलाल की कमाई करने के लिए मैं सच्चाई, ईमानदारी और मेहनत से अपना व्यापार शुद्ध व्यवहार से करता हूँ। बालक-बूढ़ा, अमीर-गरीब सब को एक जैसा समझकर उनके द्वारा दिए गए रुपय-पैसों के बदले उनको पूरा तोलकर सामान देता हूँ। धार्मिक ग्रंथों में लिखे गए 'गृहस्थ' आश्रम के नियमों का पूरी तरह से पालन करता हूँ। शास्त्रों के अनुसार अपनी कमाई में से कुछ धन निकालकर धर्मार्थ दान करता हूँ। खाली समय भजन-सिमरन और अतिथि सेवा में लगाता हूँ। अगर कोई मुझे बुरा-भला भी कहता है, तो भी मैं क्रोध करने की अपेक्षा उसे क्षमा करता हूँ। सदैव दया भावना से दूसरों के दुखों को मिटाने का प्रयत्न करता हूँ। प्रभु और देवी-देवताओं की पूजा श्रद्धा-भक्ति से करता हूँ। जब कोई अतिथि या ज़रूरतमंद यात्री मेरे पास आता है, तो प्रेम से उसकी सेवा करता हूँ। ऐसा करने से परमात्मा की कृपा द्वारा मुझे यह अवस्था प्राप्त हुई है।

यह सब सुनकर ऋषि का संशय मिट गया और जाजलिक ऋषि तुलाधार बनिये को गुरुमुख मानकर श्रद्धा से उसकी शरण में पड़ गया और मन की शाँति प्राप्त की। यह है उदाहरण एक गुरुमुख गृहस्थी का, जिसे गुरु साहिब ने धंन गिरही गुरुमुख कहा है।

दृष्टांत २– शुकदेव ऋषि को अपने त्यागी होने का अहंकार हो गया था। उसके पिता वेदव्यास ने उसका अभिमान दूर करने के लिए उसे राजा जनक के पास भेजा। राजा जनक एक गुरुमुख गृहस्थी था। एक दिन राजा जनक सत्संग कर रहे थे तो किसी ने सूचना दी कि शहर में भयंकर आग लग गई है। यह सूचना सुनकर सारे सत्संगी अपने-अपने मकान और बाल-बच्चों को बचाने के लिए वहाँ से उठकर चले गए, परंतु राजा जनक को यह सूचना सुनकर भी कोई संशय (खयाल) नहीं हुआ। उसकी दृष्टि में जगत के सारे पदार्थ मिथ्या (झूठ) और नाशवान थे। इसके अतिरिक्त उसे आत्मा-परमात्मा में भी पूरा विश्वास था। उसे आत्म-ज्ञान का दृढ़ निश्चय हो चुका था कि मेरा स्वरूप और दुनिया के सभी जड़-चेतन पदार्थ (वस्तुएँ) एक ही हैं, इसलिए अग्नि भी मेरा ही रूप है। राजा जनक की यह वृत्ति देखकर शुकदेव ऋषि को उस पर पूरा विश्वास हो गया। इस प्रकार राजा जनक के निर्लेपता वाले गृहस्थी जीवन से प्रभावित होकर शुकदेव ऋषि ने राजा जनक की शरण ग्रहण की। यह है धंन गिरही गुरुमुख।

दृष्टांत ३– एक संतोषवान ब्राह्मण था और उसका एक पुत्र था। उन दोनों पिता-पुत्र और उनकी पत्नियों का यह नियम था कि भोजन तैयार करके पहले किसी साधु-महात्मा को खिलाना, फिर स्वयं खाना। एक बार वे चारों तीर्थ यात्रा पर गए। रास्ते में भोजन पका कर उन्होंने भोजन के पाँच भाग किए। एक भाग विष्णु भगवान के लिए

और चार भाग स्वयं चारों के लिए। तत्पश्चात वे किसी अतिथि की प्रतीक्षा करने लगे। भगवान विष्णु एक ब्राह्मण का रूप धारण करके आए और बोले, मैं बहुत भूखा हूँ। मुझे कुछ भोजन खिलाओ। भगवान आपका भला करेगा! ये सुनकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अतिथि का हिस्सा उस ब्राह्मण को दे दिया। परंतु उस भोजन से ब्राह्मण की भूख शाँत न हुई और उसने और भोजन की माँग की। तब उस संतोषवान ब्राह्मण ने अपना हिस्सा उस अतिथि को दे दिया। ब्राह्मण की पत्नी ने अपना हिस्सा पति को दे दिया और पुत्र ने अपना हिस्सा माँ को दे दिया। उस लड़के की पत्नी ने अपना हिस्सा पति के आगे रख दिया। वह ब्राह्मण दूसरा हिस्सा भी खा गया परन्तु फिर भी तृप्ति न हुई। तब उन्होंने भोजन का तीसरा हिस्सा भी दे दिया। इस प्रकार एक-एक करके उस ब्राह्मण ने भोजन के पाँचों हिस्से ही खा लिए। संतोषवान ब्राह्मण और उसका परिवार भूखा ही रह गया, परन्तु फिर भी वे शाँत चित्त बैठे रहे। उनका सब्र-संतोष देखकर भगवान विष्णु उन पर बहुत प्रसन्न हुए और अपने निज स्वरूप में प्रकाशमान होकर उन्हें निहाल कर दिया। इसे ही श्री गुरु अर्जन देव जी ने धंन गिरही गुरुमुख कहा है।

प्रश्न 6. कउणु उदासी-उदासी कौन है?

उत्तर-धन गिरही उदासी गुरमुखि अर्थात उदासी गुरुमुख ही सम्मान के उपयुक्त है।

व्याख्या-जो प्राणी गुरुमुख अवस्था का स्वामी होकर अपने शरीर की कर्म इंद्रियों (हाथ-पैर आदि) और ज्ञान इंद्रियों (आँख, कान, मुँह आदि) को माया के प्रभाव से बचाकर संसार में उदास अर्थात उपराम होकर रहे, वह उदासी गुरुमुख सर्वोत्तम माना जाता है। निर्लेपता वाले (प्रवृत्ति या निवृत्ति) मार्ग में उसे विलक्षण अर्थात आश्चर्य रूप

आनंदमयी वृत्ति (अवस्था) का सदैवी सुख प्राप्त होता है। उदासी के लक्षण श्री गुरु नानक देव जी ने इस प्रकार वर्णन किए हैं–

सो उदासी जो पाले उदास।। (अंग ६५२)

वास्तव में उदासी वह है, जो शरीर की कर्म इंद्रियों और ज्ञान इंद्रियों से उपराम अर्थात उदास रहता है। जैसे कि जिह्व के होते भी पदार्थों के रसों में न फँसा रहे अर्थात भोजन के स्वादों से बचकर रहे। हमारी जिह्व का दूसरा कार्य है बोलना। जिह्व से सच्चे, मीठे, प्यार भरे और परमेश्वर की उपमा (स्तुति) के वचन बोलता रहे। ऐसे महात्मा को ही 'अजिह्वा' अर्थात जिह्व (जुबान) से उदास कह सकते हैं। जो इंसान हाथ-पैर होते हुए भी पिंगला (पंगु) होकर रहे अर्थात बुरे कर्म करने से हाथों-पैरों को रोककर रखे। आँखें होते हुए भी अंधा होकर रहे यानि बाह्यमुखता छोड़कर अंतर्मुख होकर रहे। कान होते हुए भी बहरा होकर रहे अर्थात किसी की निंदा और अनर्थ (फालतू) वचन न सुने। इस प्रकार जो भी व्यक्ति जगत से उदासी (उपरामता) धारण करता है, गुरु साहिब कहते हैं कि वही 'उदासी' है और धन्य कहलाने के योग्य है।

दृष्टांत १– एक साधु को अनारों का बगीचा देखकर अनार खाने की इच्छा हुई। पेड़ से अनार तोड़ना उसने पाप समझा और धरती पर गिरा एक अनार उसने खाने के लिए उठा लिया, साथ ही अपने मन को समझाने लगा कि हे मन! तू अब तक वासनाओं (इच्छाओं) में ही फँसा हुआ है? इस प्रकार मन को समझाकर उसने वह अनार फेंक दिया और अपने रास्ते की ओर चल पड़ा। चलते हुए एक पहाड़ के नीचे की ओर उसे एक महात्मा लेटा हुआ दिखाई दिया। उस साधु ने उस लेटे हुए महात्मा के पास जाकर उसे नमस्कार किया। उस महात्मा के सारे शरीर पर मक्खियाँ बैठ रही थीं। विश्राम कर रहे

महात्मा ने साधु को उसका नाम लेकर पुकारा और कुशल-क्षेम पूछी। साधु बड़ा हैरान हुआ और उसने महात्मा जी को पूछा कि आपने मुझे कैसे पहचाना है? महात्मा ने कहा कि जिसने परमात्मा को पहचान लिया, उससे कुछ भी छिपा नहीं रहता। साधु ने कहा कि यदि आप इतने ही पहुँचे हुए महापुरुष हो, तो ईश्वर से कहो कि वह आपको इन मक्खियों से बचाए। महात्मा ने कहा, भाई! मैं इस तुच्छ शरीर के लिए भगवान के आगे विनती क्यों करूँ? तुम से तो अपनी वासनाएं रूपी मक्खियाँ नहीं हटाई जातीं, मुझे क्या समझा रहे है। साधु होकर भी अनार खाने की वासना तूने मन में रखी है। तू सभी वासनाओं से उदास होकर रह क्योंकि वासना ही प्राणी को जन्म और मरण के चक्र में घूमाती रहती है। ऐसे महात्माओं के लिए ही कहा गया है *धंन उदासी गुरुमुख* ।

दृष्टांत २- एक समय की बात है कि देवराज इंद्र सहित सभी देवता वृत्रासुर दैत्य से लड़ाई में हार गए और दुखी होकर उन्होंने श्री नारायण भगवान के पास जाकर अपना दुख सुनाया। भगवान ने उन पर दया करके वृत्रासुर दैत्य को मारने का उपाय बताया कि आप दधीचि ऋषि के पास जाकर उनके शरीर की हड्डियाँ माँगो। उन हड्डियों से वज्र (एक प्रकार का शस्त्र) बनाओ, तब उस वज्र से वृत्रासुर दैत्य मारा जाएगा। उस दैत्य को मारने का और कोई उपाय नहीं है। यह सुनकर सब देवता दधीचि ऋषि के पास पहुँचे और उन्हें अपनी परेशानी बताकर उसका समाधान करने की विनती की। सारी बात सुनकर दधीचि ऋषि प्रसन्नचित्त अपने शरीर की हड्डियाँ देने के लिए तैयार हो गए। ऋषि ने अंतःध्यान (अंतर्ध्यान) होकर समाधि द्वारा अपना शरीर त्याग दिया। देवताओं ने उसके शरीर की हड्डियों से वज्र बनाकर वृत्रासुर दैत्य को मार कर सुख का साँस लिया।

दधीचि ऋषि जैसे महात्मा को ही पूर्ण 'उदासी' या त्यागी कहा जा सकता है। यह ही है गुरुमुख की अवस्था जिसे श्री गुरु अर्जन देव जी महाराज ने कहा है- धंन *उदासी गुरमुखि* ।

प्रश्न 7. कउणु सु कीमति पाए जीउ।। यथा परमेश्वर की कीमत पाने वाला कौन है?

उत्तर-गुरमुखि कीमति पाए जीऊ-भाव गुरमुख ही परमेश्वर की कीमत पाने वाला है।

व्याख्या-परमात्मा अमूल्य है अतः उसकी कीमत कोई भी नहीं पा (लगा) सकता, परन्तु धैर्यवान (सब्र वाले) गुरुमुख-जनों में गुरु की बख्शीश रुपी शक्ति होती है, जो वे अपना मन बेचकर (अर्पण करके) अर्थात अहंकार त्यागकर परमात्मा को खरीद लेते हैं अथवा वश में कर लेते हैं। जैसा भक्त कबीर जी का फरमान है-

कंचन सिउ पाईअै नही तोलि।।
मनु दे रामु लीआ है मोलि।। **(अंग ३२७)**

सोना-चांदी आदि बहुत कीमती संसारी वस्तुएँ भेंट करके भी राम (रमा हुआ) अर्थात परमात्मा को नहीं पा सकते, परंतु अपना मन अर्पण करके मुझे राम मिला है।

दृष्टांत १- एक बार राजा जनक के मन में ख्याल आया कि कोई ऐसा पूर्ण गुरु मिले जोकि मुझे घोड़े पर चढ़ते-चढ़ते ही ज्ञान करा दे। वह गुरु जो भी माँगेगा, मैं उसे भेंट (अर्पण) कर दूँगा। उसने सारे शहर में अपने इस संकल्प का ढंढोरा पिटवा दिया। यह समाचार सुनकर अष्टावक्र ऋषि राजा जनक द्वारा बुलाई गई सभा में आया। ऋषि ने राजा से कहा कि मैं तेरी इच्छा पूरी करूँगा, परंतु पहले मुझे गुरु-दक्षिणा दे। राजा ने कहा कि जो आप कहो, मैं देने के लिए तैयार हूँ। अष्टावक्र ऋषि ने कहा कि अपना तन, मन और

धन मुझे अर्पण करो। राजा ने ऋषि के कहे अनुसार यह वचन दे दिया और अष्टावक्र ऋषि राजा के सिंहासन पर बैठ गया। कुछ समय तक राजा ने देखा कि ऋषि राज सिंहासन पर बैठा है, परंतु कुछ बोल नहीं रहा। राजा ने समझा कि संभवत (शायद) वह इस कारण से चुप बैठा है कि राजा घोड़े पर चढ़े और मैं उसे उपदेश करूँ। ऐसा सोचकर राजा ने घोड़ा मँगवाया और जैसे ही रकाब में पैर डालकर घोड़े पर चढ़ने लगा, तो ऋषि ने आवाज़ देकर कहा कि हे राजन! खबरदार हो, तू यह क्या कर रहा है? राजा ने कहा कि मैं घोड़े पर चढ़ रहा हूँ क्योंकि आप ने मुझे उपदेश करना है। ऋषि ने कहा कि तू तन, मन और धन ये तीनों ही मुझे अर्पण कर चुके हो। अब तू अपना शरीर घोड़े के ऊपर रख रहा है, जबकि ये शरीर तो तू मुझे अर्पण कर चुका है, इसलिए तुझे घोड़े पर चढ़ने का कोई अधिकार नहीं। इसी प्रकार जब तूने सारा धन मुझे अर्पण कर दिया है, तो उसमें हाथी, घोड़े आदि सब वस्तुएँ आ गईं। तेरे पास बाकी क्या रहा है, जिस पर तू सवारी करना चाहता है? मन में तूने घोड़े पर चढ़ने का संकल्प किया है। वह मन भी मेरा है, फिर तू संकल्प किस मन से कर रहा है? ये बात सुनकर राजा को यथार्थ ज्ञान का उपदेश प्राप्त हो गया और उसकी वृत्ति समाधि में चली गई। थोड़ी देर बाद जब उसने आँखें खोलीं, तो अष्टावक्र ऋषि ने कहा कि हे राजन! अब तू बेशक घोड़े पर चढ़ और मैं तुझे उपदेश दूँगा। राजा ने कहा, हे कृपा निधान! मुझे आपकी कृपा से आत्मिक ज्ञान का उपदेश मिल गया है। अब मेरा घोड़े पर चढ़ने का या दूसरा कोई भी संकल्प बाकी नहीं रहा है। तन, मन और धन सब कुछ आपको सौंपने से मुझे अब विशेष आनंद प्राप्त हुआ है जिसका वर्णन करने की मेरे पास कोई ताकत ही नहीं है। यथा-

तनु मनु धनु अरपउ तिसै प्रभु मिलावै मोहि।।
नानक भ्रम भउ कटीऐ चूकै जम की जोह।। (अंग २५६)

श्री गुरु अर्जन देव जी फरमा रहे हैं कि हम अपना तन, मन और धन सब कुछ उसे अर्पण कर दें, जो हमें प्रभु के साथ मिला दे। जिसके साथ हमारा भ्रम और भय नाश हो जाए और हम यमदूतों की ताड़ना से बच जाएँ। यह है–

गुरमुखि कीमति पाए जीउ।।

दृष्टांत २– उद्दालक ऋषि को एक बार ख्याल आया कि मैं अपना सब कुछ दान कर दूँ। उसने अच्छी-अच्छी गौएँ अपने पुत्र नचिकेता के लिए अलग रखकर बाकी सारा सामान दान कर दिया। उसके पुत्र नचिकेता ने जब यह खबर सुनी, तो उसने अपने पिता से पूछा कि पिताजी, बाकी गौएँ आपने किसके लिए रखी हैं? नचिकेता ने यह भी कहा कि मुझे भी किसी को दान कर दो क्योंकि मैं भी आपके सर्वस्व में से हूँ। इस प्रकार वह बार-बार अपने पिता से पूछता कि वह मुझे किसे अर्पण कर रहे हो? बार-बार यह सुनकर उसके पिता को गुस्सा आ गया और कहने लगा कि मैं तुझे यमराज को दान कर रहा हूँ। नचिकेता यह बात सुनकर खुश हुआ और उसने पिता के वचन का पालन करने के लिए योगबल द्वारा शरीर सहित यमराज के पास जाने की तैयारी कर ली। इस बात से उसके पिता को बहुत दुख हुआ। पक्का इरादा करके वह योगबल से यमराज की नगरी में पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर यमराज के नगर के बाहर बैठ गया। वहाँ बैठे हुए उसे जब तीन रातें बीत गईं, तो यमराज ने नचिकेता की प्रेमभावना देखकर उसे दर्शन दिए और कहा कि मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि मुझे मिलने के लिए तू तीन रातें लगातार बैठा रहा है। अब तू मुझसे तीन वरदान माँग ले। नचिकेता

ने यमराज को नमस्कार करके ये तीन वरदान माँगे–

1. अब मैं यहाँ से वापस जब मातृलोक (धरती) में जाऊँगा, तो मेरे पिताजी मुझे यमलोक से आया हुआ समझकर सोचेंगे कि मैं नचिकेता का भूत-प्रेत हूँ, वे मेरे साथ पहले जैसा बर्ताव नहीं करेंगे, इसलिए आप ऐसी माया रचो कि मेरे पिता जी यह सारी बात भूल जाएं और जिस प्रकार मुझे पहले प्यार करते थे, उसी तरह फिर करें।

2. इस समय मुझे यज्ञ करने की पूरी विधि नहीं आती। आप कृपा करके मुझे यज्ञ की पूरी विधि समझाएं।

3. आत्मा का ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान का उपदेश मुझे दीजिए, ताकि मैं जन्म-मरण के चक्र में दोबारा न आऊँ।

यमराज ने पहले दो वरदान तो बड़ी खुशी से दे दिए। तीसरे वरदान के बारे में कहा कि तू इस बात का ख्याल छोड़ दे। इसके बदले तुझे मातृलोक (धरती) के सुख जैसे कि शरीर के सुख, माया (धन-दौलत) के सुख और दूसरे सभी प्रकार के सुख जो भी दुनिया में दिखाई देते हैं, वह मैं तुझे दे देता हूँ, और यदि तू चिरंजीवी अर्थात लंबी आयु वाला होकर भी रहना चाहे, तो यह पदवी भी मैं तुझे दे सकता हूँ, परंतु नचिकेता ने यह बात स्वीकृत नहीं की क्योंकि उसे ज्ञान था कि इस संसार के सुख तो नाशवान हैं और केवल आत्मा का सुख ही अमर है। यमराज ने उसे बार-बार लालच दिए कि वह इस विचार को छोड़ दे, परंतु नचिकेता अपने इरादे पर पक्का रहा। जब यमराज ने देखा कि इसकी वृत्ति (ख्याल) पूरी तरह से अडोल है, इसे लोक-परलोक के पदार्थों से मिलने वाले सुखों से ज़रा-सा भी लगाव (मोह) नहीं है, तो यमराज ने नचिकेता को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। ऐसी उच्च अवस्था वालों को ही कहते हैं *गुरमुखि कीमति पाए जीउ* ।।

दृष्टांत ३- एक गुरुमुख सिख भाई मंझ हुआ है जोकि बड़ा साहूकार था। उसे सरवर पीर पर पूर्ण भरोसा था। एक बार जंगल में उसने एक दरवेश (फ़कीर) को गुरुवाणी का शब्द गायन करते हुए सुना। वह दरवेश श्री गुरु अर्जन देव जी के दर्शनों के लिए अमृतसर जा रहा था। इस शब्द ने भाई मंझ के मन पर बड़ा प्रभाव डाला। उसके मन में भी दर्शन करने की इच्छा उत्पन्न हुई। तत्पश्चात भाई मंझ श्री अमृतसर पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही गुरु साहिब के चरणों में गिर पड़ा और विनती करने लगा कि मैं भूला-भटका हूँ। मुझे भी सिखी की दात प्रदान करो। गुरु साहिब ने कहा कि भाई! सिखी धारण करना कोई आसान काम नहीं है और उसे निभाना और भी कठिन है और दूसरी बात यह है कि तू सरवर पीर की पूजा कैसे छोड़ेगा? ऐसा सुनते ही भाई मंझ कोई भी उत्तर दिए बिना, गुरु साहिब को माथा टेक कर घर वापस चला गया। घर जाकर उसने सरवर पीर की कब्र तोड़ दी। लोगों में इस बात की बड़ी चर्चा हुई। प्रेम भाव से खिंचा हुआ भाई मंझ फिर श्री अमृतसर आ गया। श्री गुरु अर्जन देव जी के दर्शन करके निहाल हुआ और कब्र को तोड़ने की बात उसने गुरु साहिब को सुनाई। गुरु साहिब ने उसे समझाया कि भाई! तू सिख बनने की जिद्द छोड़ दे। सिखी निभाना बहुत कठिन है, क्योंकि सख्त व्यवहार तुझसे सहन नहीं होगा। भाई मंझ हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे सच्चे पातशाह! आप जी की कृपा हो जाए, तो सब कुछ आसान हो जाएगा। तब गुरु जी ने मुस्कुराते हुए गुरुसिखी का उपदेश दिया, फरमाया कि जा! साध संगत की सेवा कर। भाई मंझ संगत की सेवा करने में लग गया। एक बार गुरु साहिब की आज्ञा मिलने पर वापस घर चला आया। घर पहुँचे अभी दो दिन ही हुए थे कि पशुओं में बीमारी फैलने के कारण उसके बहुत

से पशु मर गए और फसल पैदा न होने के कारण वह ऋण भी ना उतार सका। विवश होकर उसे मकान बेचना पड़ा। अब प्रतिदिन की आजीविका के लिए वह जंगल से घास काटकर उसे बेचता और अपना गुज़ारा करता। उस थोड़ी सी कमाई में से भी चौथा भाग गुरु साहिब जी को अर्पण (भेंट) कर देता। दीन दुनिया के मालिक श्री गुरु अर्जन देव जी श्री अमृतसर में सरोवर की सेवा करवा रहे थे। इध्र भाई मंझ इतने कष्ट में होते हुए भी गुरु साहिब को कभी भी मन से ना भूलता था। उधर सतगुरु भी इतनी सेवा में व्यस्त होते हुए भी भाई मंझ को अपने मन से कभी नहीं भुलाते थे। एक दिन गुरु साहिब ने हुक्मनामा लिखकर एक सिख को दिया और कहा कि यह भाई मंझ के पास ले जाओ। उससे इक्कीस रुपये भेंट लेने के पश्चात ही हुक्मनामा देना। वह सिख गुरु साहिब से आज्ञा लेकर चल पड़ा और जंगल में पहुँच कर भाई मंझ से मिला। उसे बताया कि मुझे गुरु साहिब ने भेजा है। भाई मंझ ने घास की गठरी सिर से उतारकर उस सिख को माथा टेका और घर ले जाकर उसका बहुत आदर-सत्कार करके उसको भोजन खिलाया। उसके बाद अपने प्यारे गुरु जी की राज़ी-खुशी पूछी। उस सिख ने सारा हाल बताया और गुरु जी का हुक्मनामा दिखाकर कहा कि गुरु जी का हुक्म है कि इक्कीस रुपये भेंट लेने के बाद हुक्मनामा देना है। भाई मंझ ने अपनी पत्नी के साथ विचार-विमर्श किया और सोचने लगे कि इक्कीस रुपये कहां से आयें? पत्नी ने बताया कि एक दिन गाँव की साहूकारनी ने अपने बेटे के लिए हमारी बेटी का रिश्ता माँगा था। यदि आप आज्ञा दो तो मैं जाकर रिश्ता पक्का करके, उनसे पैसों (रुपयों) का प्रबन्ध करके आऊँ। भाई मंझ ने बात मान ली और उसकी पत्नी बेटी का रिश्ता पक्का करके नये समधियों से इक्कीस रुपये उधार ले आई। भाई मंझ

ने वह इक्कीस रुपये सिख के आगे रखकर गुरु जी का हुक्मनामा माथे को लगा कर बडी नम्रता से प्राप्त किया। उस हुक्मनामे में यह श्लोक लिखा था–

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए
सु भलके उठि हरि नामु धिआवै।।
उदमु करे भलके परभाती
इसनानु करे अंम्रित सरि नावै।।
उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै
सभि किलविख पाप दोख लहि जावै।।
फिरि चड़ै दिवसु गुरबाणी गावै
बहदिआ उठदिआ हरि नामु धिआवै।।
जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि
सो गुरसिखु गुरू मनि भावै।।
जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी
तिसु गुरसिख गुरू उपदेसु सुणावै।।
जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै।। **(अंग ३०५-३०६)**

अर्थ–जो अपने पूज्य सतगुरु का सिख कहलाता है उसे चाहिये कि वह प्रातः (सवेरे) उठकर हरि प्रभु का नाम स्मरण करे। उठने का उद्यम करे और अमृतसर (अमृत सरोवर) में स्नान करे या जहाँ भी हो श्री अमृत सरोवर का ध्यान करके स्नान करे। सत्संग रूपी सरोवर में स्नान करके अपने अंदर की मैल धोए और गुरु के उपदेश के अनुसार हरि (परमेश्वर) का नाम जपे, जिससे सब पापों का दुख दूर हो जाए। तत्पश्चात दिन चढ़े गुरुवाणी का गायन करे। उठते-बैठते हरि का नाम स्मरण करता रहे। जो गुरसिख उठते-बैठते, खाते-पीते

स्वास-स्वास हरि नाम का जाप करता है, वह गुरसिख ही गुरु के मन को अच्छा लगता है और उसे ही गुरु अपना उपदेश सुनाता है। श्री गुरु रामदास जी महाराज फरमाते हैं कि हम उस गुरसिख की चरण-धूल माँगते हैं, जो स्वयं हरि का नाम जपता हो और दूसरों को भी जपवाता हो।

यह हुक्मनामा देकर वह सिख, गुरु जी के पास जा पहुँचा। नमस्कार करके सारी बात सुनाई, जिसे सुनकर गुरु साहिब बड़े प्रसन्न हुए। थोड़े दिन बाद फिर गुरु साहिब ने उसी सिख को दूसरा हुक्मनामा भाई मंझ के पास ले जाने के लिए कहा और इक्कीस (21) रुपये भेंट लेने के पश्चात ही हुक्मनामा देने की आज्ञा की। इस बार भी भाई मंझ ने उस सिख को बड़े प्यार-सत्कार से भोजन खिलाया। सिख ने हुक्मनामे की बात की जिसे सुनकर भाई मंझ ने फिर अपनी पत्नी के साथ विचार- विमर्श किया कि भेंट देने के लिए पैसे कहाँ से लाएँ? ईश्वरी हुक्म से उनकी लड़की की मृत्यु भी हो चुकी थी, अन्यथा अपने समधियों से उधार ले लेते। उसकी पत्नी ने सलाह दी कि उसे किसी भले पुरुष के पास दासी की नौकरी दिलवा दो और उससे हुक्मनामे की भेंट हेतु पेशगी पैसे ले लो। भाई मंझ ने ऐसा ही किया। हुक्मनामे में लिखा हुआ था कि हे भाई मंझ! ये हुक्म पढ़ते ही हमारे पास आ जाओ। यह पढ़कर भाई मंझ बहुत खुश हुआ और उसी समय उस सिख के साथ चल पड़ा। जब गुरु जी की हजूरी में पहुँचा, तो गुरु जी ने भाई मंझ को दूर से ही देखकर अपना मुँह मोड़ लिया। भाई मंझ प्रेम भावना से भरा हुआ नमस्कार करके दूसरी ओर आया जिधर गुरु साहिब जी का चेहरा था और विनम्र आँखों से गुरु साहिब की ओर देखने लगा परंतु गुरु साहिब ने उधर भी पीठ कर ली। गुरु साहिब ने ऐसा इसलिए किया कि उनका प्यारा सिख अपना

सम्मान देखकर कहीं अहंकार न कर बैठे और सिखी की पूर्ण प्राप्ति से खाली न रह जाए। भाई मंझ धन्य है जो इन परिस्थियों में भी शुन्य मात्र डगमगाया नहीं, क्योंकि उसने आज तक स्वयं को किसी भी सम्मान की पदवी के योग्य समझा ही नहीं था, इसलिए और अधिक निष्काम सेवा के लिए लग गया। एक दिन लंगर की सेवा कर रहा था कि एक सिख ने आकर कहा कि आपको गुरु साहिब जी ने बुलाया है। भाई मंझ हुक्म सुनते ही गुरु साहिब के पास पहुँच गया। गुरु जी ने कुछ देर के लिए तो उसकी ओर देखा ही नहीं। थोड़ी देर बाद गुरु साहिब ने नज़र ऊपर करके कहा कि हे भाई मंझ! तू लंगर की सेवा तो ज़रूर करता है, सेवा करके अगर रोटी-पानी यहीं से खाता है, तो फिर तुम्हारी सेवा क्या हुई? यह तो मज़दूरी हुई। इस वचन का भी भाई मंझ पर दुखद प्रभाव कोई न हुआ और चरणों में नमस्कार करके अपनी गलती माफ़ करवाई। अब पहले से भी अधिक धैर्य के साथ सेवा करने लगा। शहर से भीख माँगकर अपनी भूख मिटाने लगा। एक दिन लंगर के लिए जंगल से लकड़ियाँ लेकर वापस आ रहा था, तो रास्ते में बहुत बड़ा तूफान आया, परंतु भाई मंझ फिर भी नहीं रुके। वह जानते थे कि रुकने से लंगर के लिए लकड़ियाँ पहुँचाने में देरी हो जाएगी। आँधी इतनी तेज थी कि रास्ते का कोई पता ही नहीं चल रहा था। रास्ता भूलकर एक सुनसान जगह पर बने एक कुएँ में अचानक गिर पड़े। कुएँ में पानी ज्यादा था, परंतु भाई मंझ संभलकर खड़े हो गए कि कहीं लकड़ियाँ पानी में गिरकर गीली न हो जाएँ। कुएँ में अधिक ठंड होने के कारण उनका शरीर काँप रहा था। सिर चकराने लगा, तो भी लकड़ियाँ मज़बूती से पकड़कर खड़े रहे। जब गुरु साहिब ने अपने सिख को हर परीक्षा में सफल देख लिया तो अंतर्यामी सतगुरु जी की आँखें भर आई। गुरु

साहिब एकदम संगत में से उठकर चल पड़े। सिखों को रस्सा लेकर आने का हुक्म देकर स्वयं नंगे पाँव उस कुएँ की ओर दौड़ पडे। सिख भी जल्दी ही रस्सा लेकर पहुँच गए। प्यारे सिख को देखकर दयालु सतगुरु जी का हृदय द्रवित हो उठा। पूछने लगे कि भाई! कुएँ में कोई है? ठंड ज्यादा होने की वजह से भाई मंझ पूरी होश में नहीं थे, परंतु गुरु साहिब की आवाज़ पहचानकर एकदम आँखें खोलकर बोले, महाराज! आपके दासों का दास मंझ है। बलिहार! बलिहार! (कुर्बान!) कहकर गुरु साहिब ने सिखों को इशारा किया कि कुएँ में रस्सा लटकाओ और भाई मंझ से कहा कि रस्से को अच्छी तरह पकड़ लो, ताकि तुम्हें कुएँ में से बाहर निकाल लें। भाई मंझ ने विनती की, हे सतगुरु! दया करके पहले लंगर की लकड़ियाँ निकालने की आज्ञा दें। गुरु साहिब जी ने मुसकराकर कहा, सत्य वचन! जैसी तुम्हारी इच्छा। तब पहले लकड़ियाँ बाहर निकाली गईं और बाद में भाई मंझ बाहर आए। बाहर आते ही उसके गीले, कीचड़ से भरे कपड़ों में ही गुरु साहिब ने उसे अपने सीने से लगा लिया और कहा, प्यारे निहाल! निहाल! निहाल! इसके साथ ही भाई मंझ के लिए वरदान के रूप में यह शब्द उच्चारण किया–

मंझ पिआरा गुरू का गुरू मंझ पिआरा
मंझ गुरू का बोहिथा जग लंघणहारा।

अर्थ–मंझ गुरु का प्यारा (प्रिय) है और गुरु मंझ का प्यारा है। मंझ गुरु का जहाज है, जिस पर चढ़कर संसार के लोग इस संसार–सागर से पार होंगे।

इस दृष्टांत से सिद्ध होता है कि किस प्रकार भाई मंझ ने अपना तन, मन और धन अपने गुरु को अर्पण किया, अतः वह गुरुमुख वाली उत्तम पदवी को प्राप्त हुए। इसे कहते हैं *गुरमुखि कीमति पाए जीउ* ।।

प्रश्न 8. किनि बिधि बाधा–ये जीव किस प्रकार जन्म–मरण के बंधन में बंधा हुआ है ?

उत्तर–हउमैं बाधा–अर्थात यह जीव हउमैं (अहंकार) में फँसा होने के कारण जन्म–मरण के बंधन में बंधा हुआ है।

व्याख्या–यह हउ–मैं (मैं हूँ) ही है, जोकि जीव को चौरासी लाख योनियों में भटकाती रहती है। प्राणी को देह–अभिमान होना कि 'मैं' हूँ अर्थात अपने पंच भौतिक शरीर और मन, बुद्धि, चित्त आदि का अहंकार करना कि ये सब 'मैं' ही हूँ। इस 'मैं' से ही 'मेरा' बनता है यानि घर–परिवार, रिश्तेदार, मित्र, ज़मीन–जायदाद, धन–दौलत, पदार्थ, जाति, मज़हब, क्षेत्र, देश और कौम आदि मेरे हैं। हउमैं में फँसे जीव की हालत के बारे में गुरु साहिब जी ने यह फरमान किया है–

सलोक मः१।।
हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ।।
हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ।।
हउ विचि दिता हउ विचि लइआ।।
हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ।।
हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु।।
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ।।
हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु।।
हउ विचि हसै हउ विचि रोवै।।
हउ विचि भरीऐ हउ विचि धोवै।।
हउ विचि जाती जिनसी खोवै।।
हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा।।
मोख मुकति की सार न जाणा।।

हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ।।
हउमै करि करि जंत उपाइआ।।
हउमै बूझै ता दरु सूझै।।
गिआन विहूणा कथि कथि लूझै।।
नानक हुकमी लिखीऐ लेखु।।
जेहा वेखहि तेहा वेखु।।१।।
महला २।।
हउमै ऐहा जाति है हउमै करम कमाहि।।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि।।
हउमै किथहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ।।
हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि।।
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि।।
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि।।
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि।।२।।

(अंग ४६६)

इन श्लोकों का अर्थ बहुत ही सरल और स्पष्ट है, जोकि आसानी से समझ आ जाता है। अहंकार और मोह के बारे में एक दृष्टांत प्रसिद्ध है।

दृष्टांत १– एक सेठ अपनी पत्नी और छोटे बच्चे को घर छोड़कर व्यापार करने के लिए दूसरे देश गया। उस देश में व्यापार अच्छा चल पड़ा, इसलिए लोभ में आकर वह उसी देश में धन इकट्ठा करने लगा। सेठ को घर से प्रदेश गए बारह (12) साल हो गए थे। उसकी पत्नी ने चिंतित होकर उसे लौट आने के लिए बहुत से पत्र भेजे, परंतु व्यापार में बहुत ज्यादा लाभ होने के कारण वह लोभ-लालच में फँसा रहा। घर की याद आने पर वह कई बार घर

लौटने की तैयारी करता, परंतु व्यापार के काम में अधिक व्यस्त होने के कारण उसे कई-कई दिन यह बात भूल जाती। आखिर एक दिन बहुत सारा सामान खरीदकर और नौकर को साथ लेकर वह घर वापस चल पड़ा।

उधर, उस सेठ का पुत्र भी अपने पिता जी को मिलने की इच्छा से गाँव के कुछ लोगों को साथ लेकर विदेश की ओर चल पड़ा। कुछ दिन चलने के बाद रात काटने के लिए एक धर्मशाला में जा ठहरे। अचानक ही आधी रात को लड़के के पेट में दर्द हुआ और वह ऊँची-ऊँची रोने लगा। रोने की आवाज़ सुन कर वहाँ ठहरे हुए उस साहूकार (सेठ) की नींद खुल गई और वह पूछने लगा कि कौन रो रहा है? क्रोध में उसने नौकरों को कहा कि इसे जल्दी चुप करवाओ, नहीं तो यहाँ से बाहर निकाल दो। मुसाफ़िरखाने के चौकीदार ने सेठ को एक बड़ा साहूकार समझकर, उस बच्चे के साथियों को कहा कि इसे चुप करवाओ, नहीं तो मजबूर होकर इस बच्चे को बाहर निकाल दिया जाएगा। चौकीदार के कहने पर साथियों ने उसे बहुत समझाया, परंतु दर्द कैसे रुके? वह लड़का थोड़ी देर तो डरकर चुप रहा, परंतु दुबारा दर्द बढ़ जाने की वजह से वह और भी ज़ोर से रोने लगा। रोने की आवाज़ से सेठ की नींद खुल गई और परेशान होकर क्रोध से बोला कि इस लड़के को उसी समय मुसाफ़िरखाने से बाहर निकाल दो। चौकीदार ने सेठ की बात मानकर बच्चे को मुसाफ़िरखाने से बाहर निकाल दिया। परमेश्वर की मौज कि वहाँ बहुत तेज़ बरसात और ठंडी हवा चलने लगी। अतः ठंड के कारण उस बच्चे की मृत्यु हो गई। सुबह जब कुछ लोग वहाँ से गुज़रे, तो उन्हें पता चला कि कोई मुसाफ़िर रात को बाहर दरवाज़े पर ही ठहरा हुआ था और ठंड के कारण मर गया है। यह समाचार सुनकर बहुत सारे लोग वहाँ

इकट्ठे हो गए। कुछ समय पश्चात मुसाफ़िरखाने का दरवाज़ा खुला और वह सेठ भी बाहर निकला। लोगों की भीड़ देखकर पूछने लगा कि ये लोग क्यों खड़े हैं? तो उसे पता चला कि जिस बच्चे को रोने के कारण रात को बाहर निकाला गया था उसे ठंड लगने से उसकी मृत्यु हो गई है। सेठ ने पूछा कि यह बच्चा कौन है और किस देश का है? लड़के के साथियों ने उसकी जेब में से एक पत्र निकाल कर सेठ को दिया। पत्र पढ़कर सेठ का रंग पीला पड़ गया। पूरा पत्र पढ़कर उसे पता चला कि यह तो उसका अपना ही पुत्र है। अतः दुख में उसके मुँह से यह शब्द निकले-हाय! मैं मर गया! हाय! मेरा एक ही पुत्र था और वह भी मेरी गलती के कारण मर गया। इस प्रकार रोते-रोते वह बेहोश होकर गिर पड़ा और सिर एक पत्थर पर लगते ही उस सेठ की भी मृत्यु हो गई।

इस घटना से स्पष्ट है कि जब तक सेठ के अंदर मोह-ममता नहीं थी, तब तक उसे किसी प्रकार का कोई दुख नहीं था, परंतु जिस समय पता चला कि यह 'मेरा' पुत्र है, तो 'हउ' और 'मैं' पैदा हो गई। उसी समय मोह के कारण दुखी और परेशान होकर पुत्र के बिछुड़ने के दुख में सेठ ने भी प्राण त्याग दिए। यह है 'हउमैं बाधा' अर्थात जीव का अहंकार में बंध जाना। इस बंधन के कारण जीव दुखी होता है और चौरासी लाख योनि के चक्र में भटकता रहता है।

प्रश्न 9. किनि बिधि छूटा-अर्थात् किस प्रकार से जीव 'हउमैं' अथवा जन्म-मरण से छूटता है?

उत्तर-गुरमुखि छूटा-भाव गुरमुखि जीवन होने पर ही यह जीव हउमैं से छूट सकता है।

व्याख्या-प्रकृति का यह नियम है कि जब तक जीव के अंतःकरण में लेश-मात्र (ज़रा-सा) भी अहंकार होता है, वहाँ अहंकार से पैदा

होने वाले विषय-विकार, द्वेष, ईर्ष्या, तृष्णा और वासना आदि भी रहते हैं। उन विषय विकारों से दुषित अर्थात् पापों से भरी हुई बुद्धि को जब तक हम प्रभु का नाम, जप-तप और साधना रूपी साबुन नहीं लगाएँगे, तब तक उस जगह पर नाम रुपी अमृत नहीं बसेगा और जहाँ नाम का निवास होगा, वहाँ हउमैं (अहंकार) पैदा ही नहीं हो सकेगी। जहाँ ज्ञान रूपी प्रकाश हो, वहाँ अज्ञान रूपी अंधकार को समाप्त होने में देर नहीं लगती। गुरु साहिब जी ने इस तरह फरमाया है-

हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इक ठाइ।।

(अंग ५६०)

जब किसी प्राणी का अंतःकरण नाम सिमरन द्वारा शुद्ध हो जाता है, तो गुरु कृपा से नम्रता, निष्हंकारता और निर्वाणता जैसे दैवीय गुण सहज रूप में (अपने आप) आ जाते हैं। तत्पश्चात् यह जीव दीन-हीन होकर गुरु चरणों की शरण लेता है और सहज में ही हउमैं रोग से छुटकारा प्राप्त करता है। इसी बात को सिद्ध करने के लिए कुछ दृष्टांत इस प्रकार हैं-

दृष्टांत १- एक बार श्री गुरु अर्जन देव जी की हजूरी में एक सिख आया और उसने प्रार्थना की, हे सच्चे पातशाह! कृपा करके मुझे पूर्ण गुरुसिख के लक्षण बताइए। गुरु महाराज ने उसे कहा कि हम तुम्हें अपने एक सिख से मिलवाते हैं, जिसके दर्शन करने से तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। इस प्रकार उन्होंने एक पत्र देकर कहा कि लाहौर शहर में हमारा एक सिख रहता है, वहां जाकर यह पत्र उसे दे देना। लाहौर पहुँचकर उस सिख ने श्री गुरु जी का पत्र उस गुरुमुख सिख को दे दिया। गुरुमुख सिख ने उसे अपने सतगुरु का भेजा हुआ अतिथि जानकर उसका बहुत आदर सम्मान किया।

उसके बाद गुरुमुख सिख ने गुरु जी का फरमान बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने मस्तक से लगाया। फरमान में लिखा था कि इस सिख के हाथ पांच सौ रुपये भेज दो। परंतु उस गरीब गुरुमुख सिख के घर में तो भोजन करने के लिए भी कुछ नहीं था। गुरु साहिब ने सिख की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया था। उस गुरुसिख ने अपनी पत्नी के साथ विचार-विमर्श किया कि गुरु महाराज की आज्ञा का पालन कैसे किया जाए। अभी सोच-विचार चल ही रही थी कि गाँव में एक ढिंढोरा दिया जा रहा था कि आज शहर के बादशाह ने पहलवानों की कुश्तियाँ करवानी हैं और वहाँ मसकीनीया नाम का पहलवान भी आएगा। जो इस मसकीनीए पहलवान से जीतेगा उसे एक हजार रुपये पुरस्कार में दिया जाएगा और जो उससे हारेगा उसे भी पाँच सौ रुपये ईनाम दिया जाएगा। मसकीनीया बहुत बलवान पहलवान था, जिसे कोई भी जीत नहीं सकता था। वह इतना ताकतवर था कि जो कोई भी उसके साथ कुश्ती लड़ता, उसे वह ज़ोर से दबाकर उसकी स्थिति मरने वाली बना देता।

यह बात सुनकर वह गुरुमुख सिख बड़ा खुश हुआ और हैरान होकर सोचने लगा कि सतगुरु अपने सिख के काम घर बैठे ही सँवार देते हैं। ऐसा सोचकर वह कुश्ती के अखाड़े में पहुँचा। जब आवाज़ आई कि है कोई ऐसा, जो मसकीनीए पहलवान के साथ कुश्ती करे? तो वह कमज़ोर-सा गुरुमुख सिख भीड़ में से निकलकर बाहर आ गया। उसे मैदान में खड़ा देखकर सब लोग कहने लगे, भई, इसके तो आज दिन पूरे हो गए लगते हैं, जो मसकीनीए का मुकाबला करने के लिए अखाड़े में आया है। मसकीनीए को भी उसे देखकर हैरानी हुई कि बड़े-बड़े ताकतवर पहलवान मेरे सामने आने से डरते हैं और यह तो बेचारा कमज़ोर-सा है। शायद अपने जीवन से दुखी होकर

मरना चाहता है। मसकीनीए ने उसको धीरे-से पूछा कि भाई! तू अपना सच्चा हाल बता कि तू अपनी मौत क्यों चाहता है? उस गुरुमुख सिख ने पूरी बात मसकीनीए को सुना दी कि गुरु जी की आज्ञा का पालन करने के लिए मुझे पाँच सौ रुपयों की ज़रूरत है। मैं बहुत गरीब हूँ और कहीं से भी पाँच सौ रुपये कमाने की मुझमें ताकत नहीं है, इसलिए मैं यह पक्का इरादा करके आया हूँ कि मैं जान गँवा कर भी अपने गुरु की आज्ञा का पालन करूँगा। इस शरीर की क्या बात है! अगर ऐसे लाखों शरीर भी हों तो भी अपने गुरु के लिए कुर्बान कर दूँ। सिख की अपने गुरु के प्रति इतनी श्रद्धा और प्रेम भावना देखकर मसकीनीए के मन में भी प्रेम आया और सोचने लगा कि धन्य हैं ऐसे पुरुष, जो अपने जीवन की परवाह न करके गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार रहते हैं, तो मैं भी ऐसे सतगुरु के दर्शन करके निहाल हो जाऊँ। मसकीनीए ने उस सिख को कहा कि कुश्ती करते-करते मैं किसी तरह से खुद अपने आप को नीचे गिरा लूँगा और तू मेरे ऊपर बैठ जाना। इस तरह तेरी जीत हो जाएगी, परंतु मेरी एक विनती है कि मुझे अपने गुरु साहिब के दर्शन ज़रूर करवाना। उस गुरुमुख सिख ने कहा, सतगुरु अंतर्यामी हैं। यदि आपका प्रेम सच्चा होगा तो खुद ही दर्शन देकर निहाल करेंगे। उसी समय मसकीनीए ने अपने मन में श्री गुरु अर्जन देव जी को नमस्कार किया। उसके बाद कुश्ती शुरु हो गई। मसकीनीए पहलवान ने काफी पारियों के बाद बड़ी होशियारी से स्वयं को नीचे गिरा लिया। वह इस प्रकार नीचे गिरा कि किसी को भी संदेह नहीं हुआ। जैसे ही वह धरती पर गिरा, वैसे ही श्री गुरु अर्जन देव के दर्शन, उसे अपने मन में हो गए, ऐसा इतिहास में लिखा गया है। गुरुवाणी में भी फरमान है-

आपु गवाईऐ ता सहु पाईऐ अउरु कैसी चतुराई।।

(अंग ७२२)

भाव यह है कि जीव अपना अहंकार छोड़े, तो पति-परमेश्वर को प्राप्त कर ले। उस मालिक को प्राप्त करने के लिए कोई भी चतुराई या समझदारी काम नहीं आएगी।

आखिर में कुश्ती देखने वाले सभी लोगों को यह प्रतियोग्यता देखकर बहुत आश्चर्य हुआ और बादशाह को भी बड़ी हैरानी हुई। बादशाह के हुक्म के अनुसार उस गुरुमुख को एक हजार रुपये ईनाम दिया गया। वह सिख बहुत खुश होकर मसकीनीए को साथ लेकर घर वापस आया। गुरु महाराज जी की ओर से आए उस सिख को साथ लेकर वे तीनों श्री अमृतसर साहिब की ओर चल पड़े। जब वे श्री गुरु अर्जन देव जी के पास पहुँचे, तो गुरु साहिब जी श्री सुखमनी साहिब का उच्चारण कर रहे थे। ग्यारह अष्टपदियों का सम्पादन कर चुके थे और बारहवीं अष्टपदी का उच्चारण कर रहे थे। दोनों गुरुमुख सिख और मसकीनीया पहलवान गुरु चरणों में पहुँचे और दर्शन करके अपने शीश सतगुरु के चरणों में झुकाए। अंतर्यामी गुरु साहिब जी उनको देखकर बहुत खुश हुए और इस श्लोक का उच्चारण किया-

सुखी बसै मसकीनीआ आपु निवारि तले।।

बडे बडे अहंकारीआ नानक गरबि गले।। (अंग २७८)

अर्थ-भाव जो भी मसकीन (विनम्र) होकर रहता है, उसे सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, परंतु जो बड़े-बड़े अहंकारी हैं, वे अहंकार में ही फँस कर दुखी होते रहते हैं। इस साखी से स्पष्ट हो जाता है कि जब मसकीनीये पहलवान ने अपनी निर्माणता (निष्हंकारता) के द्वारा अहंकार छोड़ा और गुरुमुख बना, तो ही उसे सच्चे सुख की प्राप्ति

हुई। ऐसे ही गुरुमुखों को अहंकार से मुक्त समझना चाहिए। ऐसे निष्हंकारी और विनम्र प्राणी के लिए श्री गुरु साहिब जी ने *गुरमुखि छूटा* कहा है।

प्रश्न 10. किनि बिधि आवणु जावणु तूटा।। अर्थात किस तरीके से यह जीव जन्म-मरण के दुखों से बच सकता है? भाव- जीव आवागमन के बंधन से कैसे छूटता है?

उत्तर-गुरमुखि आवणु जावणु तूटा।। अर्थात गुरुमुख होने से ही जीव जन्म-मरण के बंधन से छूट सकता है।

व्याख्या - इस संसार में चार (4) श्रेणियों के जीव हैं-

1. पामर 2. विषयी 3. जिज्ञासु 4. मुक्त।

1. पामर-वह प्राणी जो शास्त्रों में बताए गए योग्य कर्मों के विपरीत (उलट) अयोग्य कर्म करने में लगा रहे, उसे पामर कहते हैं।

2. विषयी-शास्त्र अनुसार जो प्राणी इस लोक या परलोक के पदार्थों-सुखों की इच्छा रखकर विषयों में फँसे रहते हैं, उनको विषयी कहते हैं।

3. जिज्ञासु-जिस प्राणी में उत्तम संस्कार होने के कारण शास्त्रों का विचार और महापुरुषों का सत्संग प्राप्त हो और उसे यह निश्चय हो चुका हो कि संसार के विषय-सुख और भोग सब अनित्य हैं, दुख रूप हैं, सदा रहने वाले नहीं हैं। जब तक इस शरीर का अध्यास नहीं छूटेगा अर्थात जब तक यह जीव शरीर के मोह-ममता से नहीं छूटेगा, तब तक परमानंद की प्राप्ति और सम्पूर्ण दुखों का समाप्त होना कठिन है। ऐसे पुरुषों को ही जिज्ञासु कहा जाता है। ऐसी प्यास जिस के मन में जागृत हो, वही ब्रह्म-श्रोत्री, ब्रह्म-निष्ठावान और ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों के पवित्र संग और सेवा में दृड़ होकर जब गुरुमुख बनता है, तो वह जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है।

4. मुक्त–जिन जिज्ञासु जनों को ऊपर कही गई अवस्था में से गुज़रकर आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और ब्रह्म के अनुभव द्वारा जिनका जन्म-मरण निवृत्त (समाप्त) हो जाता है, वे ही मुक्त पुरुष कहे जाते हैं।

दृष्टांत १– नारद मुनि जी सभी विद्याएँ पढ़ चुके थे, तो भी ज्ञान न होने के कारण उनके मन को शान्ति प्राप्त नहीं थी। इसलिए वह ब्रह्मा जी के चारों पुत्रों सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार के पास आए। ये चारों भाई पाँच वर्ष की आयु में ही ब्रह्म ज्ञानी हो गए थे और हर्ष-शोक आदि द्वंदों से रहित थे। नारद ने उनको नमस्कार करके विनती की, हे महापुरुषो! कृपा करके मुझे भी आत्म ज्ञान का वरदान दो। मैंने विद्या तो बहुत पढ़ी है, परंतु मुझे शाँति नहीं मिली। उन्होंने नारद मुनि से पूछा कि आपने कौन-कौन सी विद्या पढ़ी है और यह कैसे कह रहे हो कि ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई? नारद मुनि ने उनको बताया कि मैंने चार वेद, छह शास्त्र, सत्ताइस स्मृतियाँ, अठारह पुराण, तांत्रिक और ज्योतिष विद्या आदि सब विद्याएं पढ़ ली हैं, तो भी मेरे मन में से शोक की निवृत्ति नहीं होती। मुझे पता है कि ज्ञानी को शोक नहीं होता, इसलिए मैं समझ सकता हूँ कि मुझे भी अभी तक ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है। उन्होंने नारद मुनि को उपदेश किया-हे मुनीश्वर! अंतःकरण की शुद्धि के लिए प्रभु के नाम का सिमरन करो। इस प्रकार आपका हृदय शुद्ध हो जाएगा और अंतःकरण में नाम बस जाएगा। ज्ञान का प्रकाश होकर अज्ञान रूपी अंधकार मिट जाएगा और आपका शोक दूर हो जाएगा। इस तरह आत्म ज्ञान हो जाने से आप परमानंद के सदैवीय सुख को पा सकोगे। इस प्रकार नारद मुनि ने इस उपदेश अनुसार चलकर ज्ञान की प्राप्ति की और मन की शाँति प्राप्त की। इससे सिद्ध होता है कि

जब नारद मुनि गुरुमुख हुआ, तो ही उसको ज्ञान की प्राप्ति हुई और संसार के आवागमन के चक्र से छूट गया। इसको ही *गुरमुखि आवणु जावणु तूटा* ।। कहा जा सकता है।

प्रश्न 11. कउण करम अर्थात श्रेष्ठ कर्म कौन करता है?

उत्तर-गुरमुखि करम-भाव गुरुमुख ही श्रेष्ठ कर्म करता है।

व्याख्या-कर्म की गति बहुत गहन है। बड़े-बड़े विद्वान और बुद्धिमान भी इसकी गति को नहीं समझ सकते। कई बार बहुत सूझवान प्राणियों को भी पता नहीं लगता कि किस समय, कैसा कर्म करना चाहिए, इसलिए सतगुरुओं ने स्पष्ट किया है कि जब तक यह जीव गुरुमुख नहीं होता, तब तक इस प्राणी को कर्म के बारे में समझ नहीं आ सकती। कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जो पहले देखने में तो अच्छे लगते हैं, परंतु उनका परिणाम बहुत बुरा निकलता है। सर्वप्रथम लगता है कि इस कर्म का फल पुण्य होगा परंतु परिणाम यह हो कि उस कर्म का फल पाप हो जाए। इसी तरह कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं, जो पहले देखने में तो बुरे लगते हों, परंतु उन कर्मों का परिणाम बहुत अच्छा निकले अर्थात पाप के बदले पुण्य मिल जाए। ऐसी परिस्थिति में (जब कर्म की गति समझ न आए) विवेकपूर्ण, उत्तम और श्रेष्ठ विचारों की ज़रूरत होती है। ऐसे शुभ विचार तभी पैदा होंगे यदि यह जीव गुरु उपदेश को धारण करके गुरुमुख होगा।

दृष्टांत १- अर्जुन को गांडीव नाम का धनुष, इंद्र देवता से प्राप्त हुआ था। उसने प्रण किया हुआ था कि जो भी मेरे धनुष की निंदा करेगा, मैं उसका सिर काट दूँगा। युधिष्ठिर के चारों भाइयों ने यह भी प्रण किया था कि अगर कोई हमारे धर्मात्मा भाई युधिष्ठिर को बेहोश करेगा, उसे हम जान से मार देंगे। एक दिन महाभारत की लड़ाई के मैदान में राजा कर्ण, युधिष्ठिर को बेहोश करके अपने घर ले आया

और अर्जुन भी वहाँ पहुँच गया। होश में आते ही युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा कि तू मेरे दुश्मन कर्ण को मारकर आया है या नहीं? अर्जुन ने जवाब दिया, नहीं। युधिष्ठिर ने कहा कि धिक्कार है तेरे गांडीव धनुष को, जो तू कर्ण को मारे बिना ही यहाँ आ गया। युधिष्ठिर का यह कहना ही था कि अर्जुन अपने धनुष की निंदा सुनकर गुस्से से लाल हो गया। वह अपना प्रण पूरा करने के लिए तलवार लेकर युधिष्ठिर को मारने के लिए खड़ा हो गया। उसी समय श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन को कहा कि अर्जुन खबरदार! धीरज रखकर यह काम करना। पहले सोच-विचार करके देख ले कि अपने प्रण को पूरा ना करने का फल क्या होगा और अपना प्रण पूरा करने के लिए पिता समान अपने धर्मात्मा भाई युधिष्ठिर को मारेगा तो उस कर्म का फल क्या होगा? दोनों बातों को विवेक-बुद्धि के तराजू में तोलकर फिर जो तुझे अच्छा लगे, वही करना। इस बारे में मैं तुझे कुछ उदाहरण देता हूँ-

दृष्टांत २- एक व्यक्ति ने सुना था कि सच बोलने से मुक्ति मिलती है। संसार में व्यवहार और काम-धंधे करते हुए तो झूठ बोलना ही पड़ता है, इसलिए वह आदमी संसार के व्यवहार को छोड़कर जंगल में जाकर तपस्या करने लगा और हमेशा सच बोलने का संकल्प (प्रण) ले लिया। एक दिन कुछ गृहस्थी लोग परिवार सहित तीर्थ यात्रा के लिए चले। रास्ते में डाकुओं ने उन्हें देख लिया। उन लोगों को भी डाकुओं का पता चल गया, इसलिए अपने आप को बचाने के लिए वे तेज़-तेज़ चलकर जंगल में चले गए। रास्ते में जहाँ तपस्वी बैठा था, वे उसके सामने से गुज़रे और एक गुफा में छिप गए। थोड़ी देर बाद डाकू भी वहाँ आ पहुँचे और तपस्वी से पूछने लगे कि आपने कुछ लोगों को जाते हुए देखा है? तपस्वी ने विचार किए

बिना अपने सच बोलने के प्रण को पूरा करने के लिए उन्हें बता दिया कि हाँ! वे उस गुफा में छिपकर बैठे हैं। डाकुओं ने सबको मारकर उनका धन-माल लूट लिया। उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे तपस्वी ! तूने बड़ा भारी कुकर्म (बुरा कर्म) किया है, इसलिए तुझे घोर पाप लगेगा और नरक की प्राप्ति होगी। तपस्वी बहुत हैरान होकर सोचने लगा कि भई, मैंने तो सच बोला था, परंतु उसका परिणाम मुझे पाप क्यों मिलेगा? तो फिर आकाशवाणी हुई कि हे पापी! तेरे सच बोलने के कारण कितने बेसमझ और निर्दोष लोगों की हत्या हुई है। यदि तू उन डाकुओं को सच ना बताता, तो यह सब यात्री मरने से बच जाते। तुम्हें सच और झूठ बोलने की सही समझ ही नहीं है। फिर उस तपस्वी ने उस गुफा में जाकर सब यात्रियों का खून अपनी आँखों से देखा और स्वयं को उनकी हत्या का जिम्मेदार समझकर दोषी माना।

श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि हे अर्जुन! तू भी इसी प्रकार अपने प्रण को पूरा करने के लिए युधिष्ठिर को मारने के परिणाम से जो घोर पाप लगेगा और प्रण को पूरा न करने पर जो पाप तुझे लगेगा, उन दोनों बातों का विचार अच्छी तरह से कर ले। फिर तुझे जो अच्छा लगे, वह कर लेना। कर्म की गति जानना बहुत कठिन है, क्योंकि यह गति बहुत गहन है। फिर भी तुझे समझाने के लिए मैं एक और प्रसंग सुनाता हूँ-

दृष्टांत ३- गंगा के किनारे एक आदमी मछलियाँ पकड़ रहा था। उसको एक महात्मा जी कहने लगे कि भाई! यहाँ तो कई दयालु लोग मछलियों को आटे की गोलियाँ डालते हैं, परंतु तू उलटा उनको मारकर बुरा कर्म क्यों कर रहा है? उसने कहा, महाराज! यह सब-कुछ मैं अपना पेट पालने के लिए करता हूँ। महात्मा ने पूछा,

अगर तुझे पेट भरने के लिए रोज़ी-रोटी किसी दूसरे तरीके से मिल जाए, तो फिर यह बुरा काम करना छोड़ देगा? उसने कहा, हाँ महाराज, यदि खाना मिल जाए, तो मैं ऐसा बुरा काम नहीं करूँगा। महात्मा ने कहा कि तू मेरे आश्रम चल, तुझे वहाँ भरपेट खाना रोज़ मिल जाएगा। इस प्रकार वह आदमी महात्मा जी के साथ उनके आश्रम पहुँच गया। वहाँ उसे रोज़ भरपेट खाना मिल जाता था। वह संतों के स्थान में लंगर पकाने और सफाई आदि करने की सेवा हर रोज़ करने लगा। धीरे-धीरे श्रद्धा बढ़ती गई और एक दिन उसने महात्मा जी को विनती की कि कृपा करके मुझे नाम-उपदेश दीजिए। महात्मा ने कहा कि भाई! तू अभी उपदेश का अधिकारी नहीं है। पहले कुछ भजन, पाठ, सत्संग और तीर्थ यात्रा करके अपने मन (हृदय) की मैल धोने की कोशिश कर फिर हमारे पास आना। यात्रा पर जाने से पहले उसने महात्मा जी से पूछा कि मैं कब वापस आऊँ और कैसे समझूँ कि मेरे पापों की मैल उतर गई है। महात्मा ने उसे एक बाँस की लाठी दी और कहा कि जब यह हरी हो जाए, तब तू यह समझ लेना कि तेरे पाप उतर गए हैं, फिर तू हमारे पास आना, तब हम तुझे उपदेश दे देंगे। संतों की दी हुई लाठी लेकर वह वहाँ से चल पड़ा। रास्ते में जाते हुए एक गाँव के बाहर जंगल में उसे रात बितानी पड़ी। उस जंगल में दो आदमी और भी रुके हुए थे, जिनकी उस गाँव के लोगों से बड़ी भारी दुश्मनी थी। वे दोनों खुद को अकेला जानकर यह सलाह करने लगे कि किस तरह इस गाँव को आग लगाई जाए ताकि सारा गाँव जलकर राख हो जाए। उस आदमी ने जब यह बात सुनी तो उसने विचार किया कि इन दुष्टों के इस कुकर्म से न केवल इस गाँव के लोगों की मौत होगी बल्कि पशु और दूसरे जीव भी बहुत कष्ट झेलेंगे। यह सोचकर उसने अपनी बाँस की लाठी

से उन पर अचानक हमला कर दिया और उन दोनों को पीट-पीटकर वहीं मार दिया। ऐसा करने की देर थी कि वह बाँस की लाठी हरी हो गई। ये देखकर वह बड़ा खुश हुआ कि अब मेरे सारे पाप उतर गए हैं। वह वापस महात्मा के पास आया और सारी बात सुनाई। महात्मा सारी बात सुनकर खुश हुए और उपदेश दे दिया। यह कर्म बेशक बाहर से देखने में बिल्कुल बुरा लगता है, परंतु इसका परिणाम कितना अच्छा हुआ। गाँव के आदमियों व पशुओं का बचाव करने की वजह से, उन दुष्टों को मारने का पाप लगने की बजाय उसे पुण्य प्राप्त हुआ, इसलिए यह कर्म सफल हुआ और सारे पाप नष्ट हो गए।

भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को यह कथा सुनाकर समझाया कि हे अर्जुन! कर्मों की गति को जानना बहुत कठिन है। देखो ! उस आदमी ने जीवों की हत्या की और उसे पुण्य की प्राप्ति हुई, यद्यपि यह कर्म बाहर से देखने में बहुत बुरा है, परंतु परिणाम बहुत अच्छा है और उसके सारे पाप कट गए। इसलिए तू भी यह ख्याल छोड़ दे कि मैं अपने प्रण को पूरा करूँ। बड़ों का निरादर करना, उन्हें मारने के बराबर ही होता है इसलिए तू युधिष्ठिर को मारने का ख्याल छोड़ दे। भगवान कृष्ण के इन वचनों ने अर्जुन को बहुत प्रभावित किया। उसी समय तलवार छोड़कर युधिष्ठिर के चरणों में गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा माँगी। अतः सिद्ध हुआ कि जब अर्जुन ने अपने मन की अकलमंदी छोड़ी और श्री कृष्ण भगवान के वचन मानकर गुरुमुख हुआ तो वह कुकर्म करने से बच गया। इसको कहा गया है *गुरमुखि करम* ।

प्रश्न 12. कउण निहकरमा अर्थात निष्काम कौन होता है?

उत्तर-गुरमुखि निहकरमा भाव गुरुमुख ही निहकरमी (निष्काम)

होता है। जो प्राणी फल की इच्छा त्यागकर कर्म करे, वही गुरुमुख होता है या ऐसे कहें कि गुरुमुख ही निष्काम होता है। गुरु साहिब ने श्री सुखमनी साहिब में फरमाया है-

करम करत होवै निहकरम।।

तिसु बैसनो का निरमल धरम।। **(अंग २७४)**

अर्थ-जो भी पुरुष निष्काम होकर कर्म करता है, उसका धर्म निर्मल और सबसे उत्तम होता है। जब तक यह जीव इस संसार में है, तब तक उसे कर्म करने पड़ते हैं, परंतु कर्म करने में भी फर्क है। सकाम कर्म करने से अहंकार का बंधन पड़ता है और जीव को जन्म-मरण के चक्र में आना पड़ता है। गुरुवाणी का फरमान है-

करम करत बधे अहंमेव **(अंग ३२४)**

और निष्काम कर्म करने से इस जीव को परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है, जन्म-मरण की निवृत्ति (समाप्ति) हो जाती है। यथा-

सेवा करत होइ निहकामी।।

तिस कउ होत परापति सुआमी।। **(अंग २८६)**

व्यवहार में भी ऐसा देखने में आता है कि एक व्यक्ति वेतन (पगार) लेकर काम करता है और अपनी नौकरी छोड़ने के बाद बाकी बची हुई छुट्टियों के बदले भी पैसे ले लेता है दूसरी ओर यदि कोई व्यक्ति किसी सेठ के पास बिना बांधे वेतन के समर्पित होकर सेवा करके सेठ को खुश कर ले, तो वह सेठ भी उस पर प्रसन्न होकर उसको कई गुणा अधिक धन-संपति दे देता है। सकाम (कामना के साथ) कर्म उस खटाई की तरह होते हैं, जिसे खीर में डाल देने से सारी खीर खराब हो जाती है। इसी प्रकार सकाम कर्म भी जीव को यशरहित कर देते हैं। निष्काम कर्म का फल जीव को जन्म-मरण से छुड़वाकर सदैव के लिए मुक्ति का आनन्द देता है।

दृष्टांत १– एक समय की बात है कि दो राजा श्री दरबार साहिब, अमृतसर के दर्शन करने के लिए आए। वहाँ दो मालिनें फूलों की बहुत सुन्दर मालाएं लेकर आई हुई थीं। राजाओं के दरबार साहिब में प्रवेश करने से पूर्व दोनों मालिनों ने वह मालाएं उन राजाओं को भेंट कर दीं। जब वे राजा श्री दरबार साहिब जाकर वे मालाएं श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी को अर्पण करके बाहर आए, तो एक राजा ने मालिन से पूछा कि बताओ, तुम्हें माला के कितने पैसे दें? वह मालिन सकाम विचारों वाली थी। उसने राजा से माला के पाँच रुपये माँगे, जो राजा ने उसी समय दे दिए। दूसरी मालिन निष्काम और सब्र संतोष वाली थी। राजा के पूछने पर उसने उत्तर दिया कि साईं जी! मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस! आप जैसे महान पुरुषों की मेहरबानी चाहिए। इस बात से राजा बहुत खुश हुआ। खुश होकर राजा ने उस मालिन को एक जागीर (लगान माफ वाली ज़मीन का टुकड़ा) बखशिश कर दी। इससे सिद्ध होता है कि व्यवहार में निष्काम कर्म करने का फल बहुत श्रेष्ठ होता है।

दृष्टांत २– एक गरीब लकड़हारा (लकड़ियाँ काटकर बेचने वाला) था। उसके घर एक अपंग (अपाहिज) बच्चा पैदा हुआ। एक बार उस गाँव में अकाल पड़ गया, तो उस लकड़हारे ने सोचा कि हमारे पास तो खाने के लिए पेट भर खाना भी नहीं है और यह बालक हमारे किसी काम का भी नहीं है। वह उस बच्चे को जंगल में संतों की मंडली में छोड़ आया। संतों को बालक पर दया आई और उन्होंने उस बच्चे में बचपन से ही निष्काम कर्म करने के संस्कार डाल दिए और उस बालक पर कृपा दृष्टि करके उसे इच्छा रहित (निरिच्छित) कर दिया। वह अपंग बालक सदैव स्मरण-भजन में मगन रहने लगा। यदि कोई भी उसे किसी चीज की ज़रूरत के बारे में पूछता, तो वह

यही कहता कि मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। निष्काम भजन-बंदगी के प्रताप से उसका मस्तक सदैव चमकता रहता। यद्यपि वह किसी से कुछ नहीं माँगता था। फिर भी सभी संत-महात्मा प्रेम से विभिन्न वस्तुएँ ला ला कर उसके सामने रख देते। प्रभु कृपा से उस बालक की महिमा और प्रताप प्रतिदिन बढ़ता गया।

एक दिन नारद मुनि जी घूमते-फिरते, उन संतों की मंडली में आ पहुँचे। संतों से उस बालक की महिमा सुनकर नारद जी उसके दर्शन करने के लिए गए, तो बालक ने उन्हें देवर्षि जानकर सत्कार से आसन पर बिठाया और बहुत श्रद्धा-प्रेम से नमस्कार की। नारद मुनि उसकी ऐसी प्रेम भरी भावना व श्रद्धा देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि बच्चा! तुझे जो भी चाहिए माँग ले परंतु वह बालक तो पक्का निष्काम और निरिच्छित था, इसलिए उसने कहा कि मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। नारद मुनि मातृलोक (धरती) से वापस ब्रह्मलोक गए, तो ब्रह्मा जी को उस निष्काम बालक के बारे में बताया। यह सुनकर ब्रह्मा जी को भी उस निष्काम भक्त के दर्शनों की इच्छा हुई। वह अपनी पत्नी सरस्वती के साथ चलने को तैयार हुए। ब्रह्मा जी को विचार आया कि कहीं शिवजी भगवान बाद में यह न कहें कि तू अकेला ही क्यों चला गया? इसलिए उन्हें भी सूचित कर दिया। शिव जी और पार्वती भी चलने के लिए तैयार हो गए। उन्होंने सलाह की कि विष्णु भगवान जी को भी ले चलें। अतः विष्णु जी और उनकी पत्नी लक्ष्मी भी चल पड़े। भाव यह है कि तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु और शिव अपनी पत्नियों सहित नारद मुनि जी के साथ उस बालक के दर्शन करने के लिए मातृलोक (धरती) के उस जंगल में उस भक्त बालक के पास पहुँचे। वह निष्काम भक्त उनको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। सब के चरणों में माथा टेका और आसन बिछाकर प्रेम से

बैठने के लिए विनती की। कहने लगा कि आज मेरे उत्तम भाग्य हैं कि आप जैसे महान देवताओं के दर्शन प्राप्त हुए हैं। विष्णु भगवान बोले कि हम तेरे प्रेम, श्रद्धा और उच्च व्यवहार से बड़े खुश हुए हैं, इसलिए हमसे कोई वरदान माँग ले। बालक ने कहा कि हे महान देवताओ! मुझे किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं है। विष्णु भगवान ने फिर से कोई वरदान माँगने के लिए कहा कि तुझे कुछ दिए बिना हम वापस नहीं जाएँगे। तब बालक हाथ जोड़कर विनती करने लगा, मैंने सुना है कि संत महापुरुष सब को निष्काम होने की शिक्षा (सीख) देते है, परंतु क्षमा करें आप तो मुझे कुछ इच्छा करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। यदि आप मुझे इच्छाओं, कामनाओं वाली वृत्ति का वरदान देने आए हैं, तो मुझे क्षमा कीजिए, फिर कभी मेरे पास मत आइएगा। उस बालक को इतना निष्काम देखकर उन देवताओं ने अपनी शक्ति से उसके हाथ-पैर सीधे कर दिए। उसका सारा शरीर स्वर्ण जैसा सुंदर और नीरोग कर दिया। उसके बाद तीनों देवता उसको आर्शीवाद देकर वापस चले गए। वह निष्काम बालक ऐसा पूर्ण संत और निष्ठावान विद्वान हुआ कि उसका संग करके अनेक लोग भी संसार रुपी भवसागर से पार हो गए। जैसा कि श्री सुखमनी साहिब में कहा गया है-

धनु धनु धंनु जनु आइआ।।
जिसु प्रसादि सभु जगतु तराइआ।। **(अंग २६४)**

और श्री जपु जी साहिब के अंतिम श्लोक में भी फुरमाया है कि-

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि।।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि।। **(अंग ८)**

अर्थात ऐसे संत-महापुरुष ही धन्य कहलवाने के योग्य होते हैं, जोकि परमात्मा की बंदगी करके स्वयं तो इस संसार से पार हो ही

जाते हैं, दूसरे सत्संगियों को भी अपने रुहानी प्रभाव से पार कर देते हैं। संतों की कृपा से वह बालक निष्काम हुआ और गुरुमुख बना। इसे ही कहा गया है- *गुरमुखि निहकरमा* ।।

प्रश्न 13. कउणु सु कहै कहाए जीउ।। अर्थात परमात्मा के यश (उपमा) को कहने और कहलवाने वाला कौन है?

उत्तर-गुरमुखि करे सु सुभाए जीउ।। भाव गुरुमुख जो कुछ भी कथन करता है, वही शोभनीय होता है।

व्याख्या-गुरुमुख जो कुछ भी करता है, उसमें ही शोभा है। प्रायः बहुत-से लोगों को संतों-महात्माओं के रमज़ (रहस्य) भरे वचनों की अच्छी प्रकार से समझ नहीं आती क्योंकि उन वचनों का भाव-अर्थ बहुत गहरा होता है जैसे निम्न दृष्टांत से स्पष्ट होता है।

दृष्टांत १- एक बार श्री गुरु नानक देव जी भाई बाला और भाई मरदाना के साथ भ्रमण करते हुए एक शहर में पहुँचे। वहाँ के लोग इतने मनमुख थे कि उन्होंने गुरु साहिब का सत्कार करने की बजाय उनका अपमान किया। कोई सेवा करना तो दूर, बैठने के लिए भी नहीं कहा। ऐसा देख कर गुरु साहिब ने वचन कर दिया- 'सदा यहीं बसते रहो' और वहाँ से चलकर दूसरे शहर में आ पहुँचे। यहाँ के लोगों ने गुरु साहिब को संत-महापुरुष समझकर अलग-अलग स्थानों पर उनका बहुत आदर- सत्कार किया और बड़ी सेवा की। गुरु जी ने खुशी भावना में वचन किया 'उजड़ जाओ' अर्थात इस जगह से बिखर जाओ। इन रमज़ (रहस्य) भरे वचनों को सुनकर भाई मरदाना को बड़ी हैरानी हुई। उसने गुरु साहिब से इसका कारण पूछा। गुरु साहिब ने स्पष्ट किया कि भाई मरदाना ! पहले गाँव वाले व्यक्ति मनमुख थे, वे अगर किसी भी दूसरी जगह पर जाएँगे, तो वहाँ के लोगों को भी मनमुख बना देंगे, इसलिए वे सदैव वहीं बसते रहें, तो

ही ठीक है। दूसरे शहर के लोग गुरुमुख थे। वे जहाँ भी जाएँगे, वहाँ के लोग उनकी संगति से गुरुमुख बन जाएँगे, इसलिए हमने कहा कि ये यहाँ से उजड़ जाएँ। इससे सिद्ध होता है कि जो भी सत्पुरुष कहते, करते या कहलवाते हैं, उसका भावार्थ बड़ा गहरा होता है। ऐसे रहस्य भरे वचन साधारण लोगों की समझ में नहीं आते। जो गुरुमुख जन करते हैं, उसमें ही शोभा होती है। जैसे कि इस दृष्टांत में गुरु साहिब ने कहकर और करके दिखाया है। इसी में संसार का भला है। इसे ही कहते हैं–*गुरमुखि करे सु सुभाए जीउ* ।।

प्रश्न 14 व 15. कउणु सु सुखीआ कउणु सु दुखीआ।। अर्थात सुखी कौन है और दुखी कौन है?

उत्तर–गुरमुखि सुखीआ मनमुखि दुखीआ।। गुरुमुख सुखी है और मनमुख दुखी है। इस संसार में हर कोई अनुभव कर रहा है कि संसार दुखों की खान है। संसार में ऐसा कोई भी प्राणी पैदा नहीं हुआ, जिसने दुख ना पाया हो। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में राग रामकली की पहली वार की चौदहवीं पउड़ी के श्लोक में श्री गुरु नानक देव जी ने फरमाया है–

सलोकु मः१।।
सहंसर दान दे इंद्र रोआइआ।।
परस रामु रोवै घरि आइआ।।
अजै सो रोवै भीखिआ खाइ।। अैसी दरगह मिलै सजाइ।।
रोवै रामु निकाला भइआ।। सीता लखमणु विछुड़ि गइआ।।
रोवै दहसिरु लंक गवाइ।। जिनि सीता आदी डउरू वाइ।।
रोवहि पांडव भए मजूर।। जिन कै सुआमी रहत हदूरि।।
रोवै जनमेजा खुइ गइआ।। एकी कारणि पापी भइआ।।
रोवहि सेख मसाइक पीर।। अंति कालि मतु लागै भीड़।।

रोवहि राजे कंन पड़ाइ।। घरि घरि मागहि भीखिआ जाइ।।
रोवहि किरपन संचहि धनु जाइ।।
पंडित रोवहि गिआनु गवाइ।।
बाली रोवै नाहि भतारु।। नानक दुखीआ सभु संसारु।।
मंने नाउ सोई जिणि जाइ।। अउरी करम न लेखै लाइ।।१।।

(अंग ६५३)

अर्थ-इंद्रलोक के राजा इंद्र ने गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या का सत् (शील) भंग किया था, इसलिए वह परेशान होकर बार-बार रोया। उस अनैतिक कर्म के कारण गौतम ऋषि ने उसे शाप दे दिया था। ऋषि का वचन पूरा हुआ और शाप का फल भोगते समय राजा इंद्र बार-बार रोया। इसी प्रकार परशुराम ब्राह्मण भी घर आकर रोया, क्योंकि उसने क्रोध में आकर हजारों क्षत्रियों को अपने कुल्हाड़े से मार दिया था। इस घोर पाप के फलस्वरुप उसे बहुत दुख भोगना पड़ा, और वह भी बार-बार दुखी होकर रोया। इसी प्रकार राजा अजै (अज) को भी दर-दर से भीख माँगने के कारण रोना पड़ा। राजा अज त्रेता युग के अवतार भगवान श्री रामचंद्र जी के दादा थे। एक दिन वह शिकार खेलने गए और जंगल में एक हिरन को मारा। उन्होंने अपने एक कपड़े पर उस हिरन का खून लगाकर अपने राजमहल में भेज दिया और साथ में यह संदेश भी दिया कि राजा शिकार करते समय मारा गया है। राजा ने यह सब कुछ अपनी रानी के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए किया था। जब रानी ने यह संदेश सुना, तो उसने लकड़ियों की एक चिता बनाई और राजा के खून से भरा वह कपड़ा साथ में लेकर सती हो गई। जब राजा अज को इस घटना का पता लगा, तो वह बहुत दुखी हुआ और अपने पाप का पश्चाताप करने लगा। स्त्री के मोह में राज-पाट त्यागकर दर-दर से

भीख माँगकर खाता और रोता रहता था। इसलिए हे भाई! बुरे कर्म करने से परमेश्वर की दरगाह में ऐसी ही सज़ा मिलती है। इस तरह सज़ा भोगते समय जीव को बार-बार रोना पड़ता है।

इसी प्रकार श्री राम जिस समय वनवास काटने के लिए जंगल में गए तो अपनी पत्नी सीता जी और भाई लक्ष्मण के बिछुड़ने के कारण बार-बार रोए। राजा रावण जिसके दस सिर थे, अर्थात जो बड़ा बुद्धिमान और विद्वान भी था। डमरू बजाकर सीता को चुरा ले गया और बार-बार रोया, क्योंकि इस गुनाह (अपराध) के कारण वह अपनी सोने की लंका और सारे कुल का नाश करवा बैठा। इसी प्रकार पांडव, जिनका साथ प्रायः हर समय भगवान श्री कृष्ण देते थे, उन्हें भी दुखी होकर रोना पड़ा। जब वे पाँचों पाँडव राजा विराट के पास छिपकर समय बिता रहे थे, तो उस समय राजा विराट की पत्नी के भाई कीचक ने द्रोपदी को बहुत सताया था। उस वक्त पाँडवों को लाचार होकर रोना और बहुत दुखी होना पड़ा था। इसी तरह राजा जनमेजा को भी रोना पड़ा, क्योंकि उसने अपने गुरु श्री वेद व्यास जी का वचन नहीं माना और अपनी रानी के कहने पर ब्राह्मणों को मार दिया, और पाप का भागी बना। शेख (बड़े विद्वान), मसाइक (साधक) और पीर (धर्म आचार्य) भी चिंतित होते हैं कि अंत समय कोई दुख न भोगना पड़े। राजा भर्थरी और गोपी चंद भी रोए, क्योंकि उन्हें राजसुख त्यागकर कान छिदवाकर योगी का भेष धारण करके घर-घर भीख माँगने जाना पड़ा। इसी प्रकार कंजूस जो बहुत कष्ट उठाकर धन इकट्ठा करते हैं, उस धन के छिन जाने पर बार-बार रोते हैं। इतिहास साक्षी है कि अजामल ब्राह्मण भी बुरे कामों में फँसकर अपना विवेक रूपी ज्ञान गँवाकर रोया। स्त्री को जब पति न मिले या मिलकर बिछुड़ जाए तो वह पतिहीन होकर रोती है। साहिब श्री गुरु नानक

देव जी फरमाते हैं कि हे भाई ! इस तरह सारा संसार दुखी हो रहा है, परंतु जो श्रद्धा-प्रेम से नाम का जाप करते हैं, वे दुनिया के दुख-सुख को जीत लेते हैं और अपना जन्म सफल कर लेते हैं, इसलिए परमात्मा के नाम स्मरण के अतिरिक्त कोई भी कर्म स्वीकृत नहीं है अर्थात नाम ही सबसे उत्तम कर्म है। इससे स्पष्ट होता है कि जब तक यह जीव नाम जपकर गुरुमुख नहीं बनेगा, तब तक इसका सुखी होना कठिन है। देखने में भी आता है और सब इस बात को मानते भी हैं कि केवल हरि परमेश्वर के प्यारे अर्थात गुरुमुख ही इस संसार में कमल फूल की भांति निर्लेप (असंग) रहकर अपना समय सुख-शाँति से बिताते हैं। शेष सभी मनमुख होने के कारण हाय-हाय करते रोते-चीखते हैं और सदैव दुख गृहस्थ होते हैं। इससे सम्बन्धित एक गुरुमुख और मनमुख की साखी इस प्रकार है-

दृष्टांत १- एक गुरुमुख जिसका नाम हरिदास था, यात्रा करने के लिए घर से चला। रास्ते में उसे एक मनमुख व्यक्ति मिला। दोनों इकट्ठे आगे चल पड़े। मनमुख ने देखा कि गुरुमुख के पास कुछ धन-माल है। उसने विचार किया कि किसी तरीके से इसका धन छीन लूँ। गुरुमुख की वृत्ति (ध्यान) सदा आनंदमयी रहती थी और मन में द्वेष भावना बिल्कुल भी नहीं थी, इसलिए उसे मनमुख पर कोई शक भी नहीं था कि मैं इस अपरिचित (अनजान) आदमी के साथ चला जा रहा हूँ और यह मेरा धन-माल भी छीन सकता है और लालच के कारण मुझे मार भी सकता है। इस प्रकार दोनों कुछ दिन इकट्ठे साथ-साथ रहकर चलते रहे। एक दिन चलते-चलते रास्ते में उन्हें एक कुआँ नज़र आया, तो दोनों ने सलाह की कि यहाँ पानी पीकर कुछ देर आराम कर लें, फिर आगे चलेंगे। दोनों ने अपना सामान रखकर स्नान करने के लिए कपड़े उतारे। मनमुख ने पहले स्नान

करके कपड़े पहन लिए, परंतु गुरुमुख अभी नहा रहा था। मनमुख अच्छा मौका देखकर कहने लगा कि मुझे प्यास लगी है, थोड़ा पानी भरकर देना। गुरुमुख ने रस्सी के साथ बर्तन बाँधकर कुएँ में से पानी निकालकर मनमुख को पिलाया और अपने लिए पानी निकालने लगा, तो मनमुख ने उसे धक्का देकर कुएँ में गिरा दिया और उसका धन-माल लेकर भाग गया। गुरुमुख बेचारा उस कुएँ में एक झाड़ (छोटा पेड़) के तने पर बैठा रहा। जब रात का अंतिम पहर आया, उस झाड़ पर एक प्रेत और एक नाग आपस में बातें करने लगे। नाग ने प्रेत को कहा कि हे मित्र! हम दोनों बहुत समय इकट्ठे रहे हैं, परंतु आज तू मुझे बहुत समय बाद मिला है। तू कहाँ रहता है? प्रेत ने कहा कि मैं इस समय देवदत्त राजा की बेटी के शरीर में रहता हूँ। नाग ने पूछा कि तू वहाँ किस प्रकार रह रहा है? राजाओं के पास तो हमेशा बड़े-बड़े मंत्रों और तंत्रों को जानने वाले लोग होते हैं। प्रेत ने कहा कि मेरे ऊपर किसी का भी ज़ोर नहीं चल सकता। मुझे निकालने का तरीका किसी को नहीं आता, केवल मुझे ही पता है। नाग ने कहा कि वह कौन-सा तरीका है? प्रेत ने बताया कि फलां (किसी) पहाड़ पर फलां (इस) किस्म की बूटी है, इस बूटी का धुआँ यदि मुझे कोई दे, तो तुरंत मुझे उस कन्या के शरीर में से निकलना पड़ेगा। फिर प्रेत ने नाग से कहा कि मैं भी कई बार यहाँ आया हूँ, परंतु आप नहीं मिले। पता नहीं आप कहाँ रहते हो? आज बहुत दिनों बाद आप मिले हो। क्या आपको भी मेरी तरह कोई सुखमयी स्थान मिला है? नाग ने कहा कि तूने बात तो बड़ी अच्छी की है। ले सुन! फलां (किसी) स्थान पर सात बादशाहों का खज़ाना दबा हुआ है। इस समय मैं वहाँ रहता हूँ। प्रेत ने उसे कहा कि यदि किसी को उस खज़ाने का पता लग गया तो तुझे बाहर निकाल देगा। नाग ने

कहा कि मुझे निकालने का उपाय भी किसी को नहीं पता, केवल मैं ही जानता हूँ। प्रेत के पूछने पर नाग ने उसे अपने निकाले जाने का तरीका बताया कि अगर कोई आदमी गरुड़ पक्षी की विष्ठा का धुआँ वहाँ करेगा, तो मुझे उसी समय जाना पड़ेगा। इस बातचीत के बाद प्रेत और नाग वहाँ से विदा होकर अपने-अपने स्थान पर चले गए।

गुरुमुख ने उन दोनों की बातें सुनकर अच्छी प्रकार याद कर लीं। जब दिन निकला, तो कोई मुसाफिर कुएँ में से पीने के लिए पानी निकालने लगा तो गुरुमुख ने रस्सी को पकड़ लिया और मुसाफिर को ज़ोर से आवाज़ देकर कहा कि हे भाई! मुझे बाहर निकाल। मुसाफिर ने उसे बाहर निकाला। गुरुमुख ने उस मुसाफिर का धन्यवाद किया और वहाँ से चल पड़ा। जिस पहाड़ पर उस प्रेत को निकालने वाली बूटी थी, वहाँ पहुँच गया। वहाँ से बूटी लेकर उसको परखने के लिए देवदत्त राजा के नगर में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह स्वयं को एक वैद्य बताने लगा। उसने उस शहर में ढिंढोरा दे दिया कि अगर किसी को भी जिन्न, भूत, प्रेत ने पकड़ रखा हो, तो मेरे इलाज से उसी समय ठीक हो जाएगा। यह सूचना राजा के पास पहुँची, तो उसने एकदम उसे अपने पास बुला लिया। राजा का प्रण था कि जो कोई भी मेरी बेटी को इस बला से छुड़ाएगा, उसके साथ ही मैं अपनी बेटी की शादी कर दूँगा। राजा ने उस गुरुमुख को कहा कि अगर मेरी बेटी को इस बीमारी से ठीक कर दोगे, तो मैं अपने प्रण की पालना करूँगा और सारी आयु तेरा आभारी भी रहूँगा। गुरुमुख ने कहा कि ठीक है! जिस समय उसने बूटी का धुआँ राजकुमारी को दिया, तो वह प्रेत चीखें मारता हुआ, उसके शरीर से बाहर निकल गया। राजकुमारी बिल्कुल ठीक हो गई। यह देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। वह गुरुमुख बहुत सुंदर था। राजा ने उसी दिन अपनी बेटी की शादी

उसके साथ कर दी और राज-पाट भी दे दिया। गुरुमुख ने यह पदवी मिलने के बाद राजा को भक्ति और साधु-संतों की सेवा करने में लगा दिया जिसके कारण राजा का यश दूर-दूर तक फैल गया। इस तरह बहुत से साधु-संत और ज़रूरतमंद लोग आने लगे। जिन्हें भी अन्न, कपड़ा या अन्य किसी वस्तु की ज़रूरत होती थी, राजा उन्हें मुँह माँगा दान देता था। उधर मनमुख को भी सूचना मिली कि राजा संतों की बहुत सेवा करता है। वह भी संत का भेष बनाकर वहाँ जा पहुँचा, तो गुरुमुख ने उसे पहचान लिया कि इसी ने मुझे कुएँ में धक्का दिया था। मनमुख ने भी पहचान लिया और मन ही मन डर गया, परंतु गुरुमुख ने उसका आदर-सत्कार किया। मनमुख ने गुरुमुख से कहा कि आप मेरा गुनाह माफ़ कर दो। फिर वह मौका देखकर डरते-डरते गुरुमुख से पूछने लगा कि आपको यह पदवी किस तरह मिली? गुरुमुख ने उसे विश्वास दिया कि भाई! तू डर मत। तू मेरा मित्र है। परमात्मा की कृपा से मुझे यह पदवी मिली है, इसलिए तू भी इससे सुख ले सकता है। मनमुख उसका इतना प्रेम देखकर पूछने लगा कि अपना हाल तो सुना कि कुएँ में गिरने के बाद तेरा क्या हाल हुआ था और तू कैसे बाहर निकला था ? तब गुरुमुख ने उस कुएँ में नाग और प्रेत की जो आपसी बातचीत सुनी थी, वह बिना छल-कपट के सुना दी। यह भी कहा कि मैं उस प्रेत के द्वारा उपाय बताने के कारण ही इस पदवी पर पहुँचा हूँ। मनमुख काफी दिन वहाँ रहा। आखिर एक दिन उसके मन में विचार आया कि कहीं यह राजकुमार किसी समय मुझे मरवा ही न दे। ऐसा सोचकर उसने गुरुमुख से जाने के लिए आज्ञा माँगी। जाते समय गुरुमुख ने राजा से उसको बहुत-सा धन और वस्त्र आदि दिलवाए, राजा के मंत्री और नौकर-चाकर आदि उसे कुछ दूर तक विदा करने के लिए भेज दिए। रास्ते

में मंत्री ने मनमुख से पूछा कि राजा के दामाद के साथ तेरा क्या संबंध है, जो उसने तेरा इतना मान-सम्मान किया है? मनमुख ने कहा कि तू यह बात मत पूछ। जब मंत्री ने जोर देकर पूछा, तो उस मनमुख ने कहा कि वह हमारे गाँव की नीच जाति का आदमी है और यहाँ राजा का दामाद बनकर बैठा है। उसे डर था कि कहीं मैं राजा को यह सारी बात न बता दूँ, इसलिए उसने मेरी खुशामद की है। तू यह बात अपने तक ही रखना और राजा को कहना कि गंगा स्नान करके प्रायश्चित कराए। ऐसा कहकर मंत्री से विदा लेकर वह मनमुख अपने रास्ते चला गया।

वापस आकर मंत्री ने राजा को अकेले बिठाकर मनमुख वाली सारी बात बताई। बात सुनकर राजा को बहुत गुस्सा आया कि इसने (गुरुमुख ने) हमारा जन्म भ्रष्ट कर दिया है, इसे तो मार देना चाहिए। गुरुमुख प्रतिदिन राजा के साथ खाना खाता था। उसी दिन राजा ने राजदरबार के बरामदे में एक पहरेदार नंगी तलवार लेकर खड़ा कर दिया और उसे हुक्म दे दिया कि जिस वक्त मेरा दामाद आए, उसी वक्त उसे कैद करके मेरे पास ले आना। जब प्रतिदिन की तरह गुरुमुख खाना खाने के समय उधर आया, तो उसे कैद करके राजा के पास ले जाया गया। राजा ने उसे गुस्से से कहा कि तूने मेरा जन्म भ्रष्ट कर दिया है। तू नीच जाति का होकर भी मेरे घर में रहा है। ऐसा सुनकर गुरुमुख ने राजा से पूछा कि आपको यह बात किसने कही है ? राजा ने मंत्री की सारी बात बता दी। गुरुमुख ने कहा कि उस मनमुख आदमी का यह कहना बिल्कुल झूठ है बल्कि उसने तो मेरे साथ बहुत बुरा किया था, परंतु मैं समझा था कि मेरा फ़र्ज़ है कि इसकी बात छिपाकर रखूँ। इसलिए मैंने आपको उसकी सारी करतूत नहीं सुनाई थी। इस तरह उसने राजा को कुएँ वाली घटना

अर्थात नाग और प्रेत के मिलने की घटना और पहाड़ी बूटी और धन वाली सारी कहानी सुना दी। राजा ने कहा कि यदि यह बात सच है तो मुझे वह धन दिखाओ। राजा सैर करने के बहाने उसके साथ वहाँ गया, जहाँ वह नाग रहता था। गुरमुख ने वहाँ पहुँचते ही गरुड पक्षी की बीठ का धुआँ कर दिया जिसके कारण नाग एक दम वहाँ से भाग गया। फिर उस जगह को खुदवाया गया, तो बहुत सा धन, सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात आदि सात बादशाहों का दबा हुआ खज़ाना मिला। यह कीमती खजाना देखकर राजा बड़ा खुश हुआ और अपने दामाद से प्रेम करने लगा। राजा अपने दामाद गुरुमुख से कहने लगा कि मेरी गलती माफ़ कर दो। अब आप मुझसे भी बड़े साहूकार हो। इतना कुछ देख-सुनकर भी राजा के मन में उसकी जाति के प्रति शंका बनी रही। उसने वापस आकर अपने दामाद के रिश्तेदारों के पास एक आदमी भेजा कि उसकी जाति के बारे में पूछताछ करके आओ। अगर सचमुच ही उसकी जाति ऊँची हो तो संबंधियों को बड़ी धूमधाम से अपने साथ लेकर आने के लिए कहा। राजा का आदमी उस गुरुमुख के देश में पहुँचा, तो उसे खबर मिली कि उस गुरुमुख की जाति ऊँची है। वह आदमी राजा के आदेश के अनुसार उसके परिवार वालों को बड़ी शान और मान-सम्मान के साथ राजदरबार में लेकर पहुँचा। राजा ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और यथायोग्य सेवा की।

उधर मनमुख का हाल सुनो-

मनमुख जब मंत्री से विदा होकर थोड़ा आगे गया, तो उसने सोचा कि मैं भी उस कुएँ में जाकर नाग और प्रेत की बातें सुनूँ और कोई ऊँची पदवी हासिल करूँ। मनमुख वहाँ जाकर उस झाड़ी के नीचे छिप गया। उसी रात प्रेत और नाग फिर वहीं आकर मिले। एक दूसरे

से हाल-चाल पूछा। फिर कहने लगे कि यह क्या हुआ कि हम दोनों को सुख देने वाली जगह हमसे छिन गई! नाग ने कहा कि इसमें कोई शक नहीं कि उस समय ज़रूर कोई आदमी छिपकर बैठा था और हमारी बातें सुनकर हमारा सारा भेद जान गया। उसने हमें निकालने के वही-वही उपाय किए होंगे, जिसके कारण से हम दोनों दुखी हुए हैं। आज भी पहले जाकर देख लें कि कहीं कोई हमारी बातें न सुन रहा हो। मुझे ऐसी एक और जगह का पता है, अब मैं वहाँ जाकर रहूँगा। प्रेत ने कहा कि शाम के समय एक आदमी यहाँ आया तो था, कहीं वह अब तक यहीं छिपा बैठा हो और हमारी बातें सुनता हो? मैंने भी अपने आराम के लिए एक और जगह ढूँढ ली है। हम दोनों आपस में बातें करने से पहले अच्छी तरह देख लें कि यहाँ कोई है तो नहीं? फिर अपना हालचाल और ठिकाना एक-दूसरे को बताएँगे। प्रेत ने नाग को कहा कि तू यहाँ बैठ, मैं कुएँ में जाकर देखता हूँ। जब प्रेत ने कुएँ में नीचे उतर कर देखा, तो वही आदमी जो शाम के समय देखा था, झाड़ी में छिपा बैठा था। उसे पक्का यकीन हो गया कि ज़रूर यही आदमी है, जो हमारी बातें सुनकर सारा भेद ले गया और फिर हमारे दुखों का कारण बना है। प्रेत ने उस मनमुख को पकड़कर कहा कि तू फिर हमारी बातें सुनने के लिए यहाँ आया है? अब तुझे अच्छा सबक सिखाएँगे। ऐसा कहकर उसे कुएँ से बाहर निकालकर खूब पीटा। नाग ने भी अपना गुस्सा निकालते हुए उसे डंक मारा, जिससे वह मनमुख वहीं मर गया। इसलिए गुरु साहिब जी ने फरमाया है- *गुरमुखि सुखीआ मनमुखि दुखीआ* ।।

प्रश्न 16 व 17. कउणु सु सनमुखु कउणु वेमुखीआ।। अर्थात गुरु के सम्मुख कौन है और विमुख (बेमुख) कौन है?

उत्तर-गुरमुखि सनमुखु मनमुखि वेमुखीआ।। भाव जो गुरुमुख

होता है, वही गुरु के सम्मुख होता है अर्थात गुरु की आज्ञा के अनुसार चलता है। मनमुख, गुरु से विमुख होता है अर्थात गुरु की आज्ञा से बाहर चलता है।

व्याख्या–जो प्राणी गुरुमुख होते हैं, वही परमात्मा के सम्मुख होने के कारण मुक्त अवस्था को प्राप्त करते हैं। यदि हम सूरज की तरफ मुँह करके चलेंगे, तो हमारी परछाईं अपने आप हमारे पीछे चलेगी और यदि सूरज की ओर पीठ करके चलेंगे, तो हमारी परछाईं हमारे आगे चलेगी और बहुत प्रयत्न करने पर भी पकड़ी नहीं जाएगी। इस प्रकार जो प्राणी गुरुमुख बनकर परमात्मा के सम्मुख हो जाते हैं, उनके पीछे यह संसार रुपी माया परछाईं की तरह रहती है और जो प्राणी मनमुख होकर परमात्मा से विमुख हो जाते हैं, वे माया रूपी परछाई के पीछे कितना भी दौड़ें, वह माया उनके हाथ नहीं आती। गुरुमुख होने पर परमात्मा और माया दोनों मिल जाते हैं और मनमुख बनने से यह प्राणी परमात्मा और संसार दोनों से ही खाली रह जाता है, भाव कि दोनों ही नहीं मिलते। जैसे भक्त प्रह्लाद को मारने के लिए उसके पिता हिरण्यकशिपु ने बहुत प्रयत्न किये, परंतु प्रह्लाद गुरुमुख था और परमात्मा के सम्मुख होने के कारण वह सब कठिनाइयों को पार कर गया। प्रह्लाद के पिता को चाहे अनेक दैवीय वरदान मिले हुए थे, फिर भी वेमुख (बेमुख) होने के कारण परमेश्वर ने उसे मारने के लिए नरसिंह का रूप धारण किया और दुष्ट हिरण्यकशिपु का नाश किया। इस प्रकार परमात्मा ने अपने गुरुमुख भक्त प्रह्लाद की रक्षा की। इस प्रकरण के बारे में श्री गुरु ग्रंथ साहिब का फरमान है–

हरणाखसु दुसटु हरि मारिआ प्रहलादु तराइआ।।

(अंग ४५१)

दृष्टांत १-

जिउ जन चंद्रहासु दुखिआ ध्रिसटबुधी अपुना घरु लूकी जारे।।

(अंग ६८२)

अर्थ-जैसे राजा धृष्टबुद्धि ने भक्त चंद्रहास को दुखी करके अपना घर (हृदय) आग (ईर्ष्या) की चिंगारियों से जला लिया था, भाव कि एक भक्त को दुख पहुँचाने के कारण उसका हृदय रूपी घर पापों की अग्नि से जलकर अत्यंत दुखी हुआ था।

दक्षिण भारत के महिलपुर देश में 'सुधर्म' नाम का एक महान धार्मिक राजा था, जिसके घर एक बहुत सुन्दर पुत्र पैदा हुआ। यह बच्चा अभी दो-तीन महीने का ही था कि उसके देश पर कुंतल देश के राजा कंतूहल ने हमला कर दिया। युद्ध में राजा सुधर्म मारा गया और उसकी रानी ने सती होने का प्रण कर लिया। सती होने से पहले उसने अपने पुत्र को आर्शीवाद दिया और दासी को उस बच्चे का पालन-पोषण अच्छी तरह से करने की बात समझाकर वह स्वयं सती हो गई।

राजा कंतूहल, राजा सुधर्म का जीता हुआ देश अपने मंत्री धृष्टबुद्धि को देकर स्वयं वापस चला गया। अब धृष्टबुद्धि इस देश का राजा बन गया। यह राजा धृष्टबुद्धि और उसका मंत्री कुबुद्धि बड़े दुष्ट, पापी और कठोर हृदय वाले थे। ये दोनों अपनी प्रजा को बहुत सताया करते थे। उसका एक पुत्र मदन और एक पुत्री विषया थी। उधर वह दासी सुधर्म राजा के पुत्र को महल में से चोरी-छिपे एक जंगल में ले गई और उसे जंगल में एक महात्मा की शरण में छोड़ दिया। महात्मा जी ने शरणागत बालक का पालन-पोषण करना अपना धर्म समझा और दासी को वहीं रहकर उस बालक की और आये-गये संत-महात्माओं की सेवा करने की आज्ञा की। दुर्भाग्यपूर्ण वह बालक

अभी तीन वर्ष का ही था कि दासी की मृत्यु हो गई। संतों महापुरुषों की मण्डली में रहता हुआ वह बालक, उनकी शिक्षा के अनुसार परमेश्वर का भजन करने लगा। कुछ समय पश्चात वे संत तीर्थ यात्रा जाते हुए उस बालक को भी साथ ले गये। चलते-चलते एक दिन वे उसी राजा धृष्टबुद्धि के राज्य में पहुँचे। वहाँ के लोगों के मन में संतों के लिए बहुत श्रद्धा-प्रेम था। महापुरुषों के आने की सूचना सुनकर वे लोग संतों के दर्शन करने गए और उन्हें भोजन करने के लिए विनती की। संतों ने उनका प्रेम देखकर 'हाँ' कर दी और प्रेम से भोजन करके उनको आशीर्वाद दिया। राजा को मालूम हुआ, तो उसने भी लोक-लाज का ध्यान रखते हुए संतों को लंगर खाने के लिए विनती की। विनती स्वीकार करके वे संत-जन बालक को साथ लेकर राजा के महल में गए। जब भोजन खिलाया जा रहा था, तो राजा धृष्टबुद्धि ने उस बालक को देखकर मंत्री कुबुद्धि से कहा कि देखो! इन साधुओं ने अपना पेट पालने के लिए इस छोटे से बालक को दुनिया से अलग कर दिया है। छोटी आयु में ही इसको संत बनाने का क्या लाभ? जब राजा और मंत्री यह बात कर रहे थे तो संतों ने सुन लिया और उस बालक की ओर देखकर मुसकराने लगे। राजा ने संतों से हँसने का कारण पूछा तो एक संत ने कहा कि हे राजन! हमें परमेश्वर की लीला पर बड़ी हैरानी हो रही है कि जिस बालक के बारे में आप बात कर रहे थे, उसके मस्तक को देखकर, योगबल से हमें इसके भविष्य की समझ आई है कि यह बालक बड़ा होकर आपका दामाद बनेगा। यह बात सुनकर धृष्टबुद्धि मन ही मन ईर्ष्या से जल गया परंतु बाहर से चुप रहा। संत जन बालक सहित भोजन कर के वहाँ से चले गए। अब राजा ने मंत्री के साथ सलाह की कि किसी प्रकार से भी इस बालक को मरवा दिया जाए क्योंकि यदि यह

जीवित रहा, तो मेरा दामाद बनेगा। मेरे कुल को कलंक लगेगा और लोग हँसेंगे कि एक भिखारी साधु को राजा ने दामाद बना लिया। गुप्त रूप से यह सलाह करके उसने जल्लादों को बुलाकर कहा कि इस बालक को किसी तरह भी गुप्त रुप से मार दो, परंतु निशानी के तौर पर इसके पैर की एक उँगली (अँगुली) काटकर मुझे लाकर ज़रूर दिखाना।

राजा की आज्ञा अनुसार जल्लादों ने बालक को संतों से जबरदस्ती छीन लिया और घने जंगल में ले गए। जब उसे मारने की तैयारी करने लगे, तो बालक ने जल्लादों से विनती की कि उसे दो-चार दिन का समय और दे दो ताकि वह परमात्मा का स्मरण और कर ले। उसके पश्चात आप अपना काम पूरा कर लेना। जल्लादों ने उसकी बात मान ली। वह बालक परमात्मा के ध्यान में इतना एकाग्रचित्त हो गया कि उसके मस्तक का तेज प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। जब जल्लादों ने ऐसा देखा कि बालक बहुत शाँत मन तथा अडोल वृत्ति वाला और परमेश्वर का भक्त मालूम पड़ रहा है, तो वे बहुत प्रभावित हो गए। उनको दया आई कि ऐसे निर्दोष बालक को मारकर वे बहुत बड़ा पाप करेंगे। वे खेदपूर्वक उस बालक को कहने लगे कि हमें आपकी ऐसी ऊँची अवस्था का अनुमान नहीं था। आपको मारकर उस बुरे कर्म का फल हमें घोर पाप मिलना था परंतु हमें राजा से भी अपनी जान बचानी है, इसलिए आपके पैर की एक उँगली काटकर हम ले जाते हैं, जैसा कि हमें राजा का हुक्म है। बालक ने जल्लादों को नाम का उपदेश दिया और आशीर्वाद देकर अपना पैर उनके आगे कर दिया। संयोगवश बालक के उस पैर पर छठी उँगली भी थी जिसके कारण उसे राजा बनने में बाधा पड़ रही थी। जल्लादों ने वही छठी उँगली काटकर राजा धृष्टबुद्धि को दे दी,

जिसे देखकर वह बहुत खुश हुआ। समझने लगा कि मेरा दुश्मन भी मर गया और संतों का वचन भी झूठा हो गया। उधर वह बालक जंगल में से बाहर आ गया और एक पेड़ के नीचे बैठकर नित्तप्रति कीर्तन करने लगा। उसका मधुर कीर्तन सुनकर जंगल के पशु-पक्षी सब मुग्ध होकर उसके आस-पास बैठ जाते। एक दिन राजा कुलिंद उधर से गुजरा और कीर्तन का यह दृश्य देखकर उसका ध्यान सत्संग की ओर गया। जब राजा ने उस बच्चे का सुंदर रूप और प्रभावशाली मस्तक देखा, तो बड़ा प्रभावित हुआ और उसे नमस्कार करके कहने लगा कि परमेश्वर ने मुझ पर बड़ी कृपा की है, जोकि आप जैसे सुंदर पुत्र का मिलाप हुआ है। आप चलकर मेरे महल में रहो। मेरा कोई पुत्र नहीं है। मेरे भाग्य अच्छे हैं, जो आज परमेश्वर की कृपा से मुझे आप जैसा सुशील और भक्त पुत्र मिला है।

वह इच्छारहित बालक राजा का प्रेम देखकर उसके साथ चल पड़ा। दोनों घोड़े पर सवार होकर महलों में पहुँचे और आगे रानी भी उन्हें देखकर सब बात समझ गई और बड़ी खुश हुई। राजा को सुयोग्य पुत्र मिलने की खुशी में सारे शहर के लोगों ने बहुत खुशियाँ मनाईं। राज दरबार में भी अनेक प्रकार के जश्न (समारोह) मनाए गए। उस बच्चे का नाम चंद्रहास रखा गया, क्योंकि उसका चेहरा चंद्रमा की तरह चमकने वाला, तेजस्वी और हँसमुख था। राजा कुलिंद राजा कंतूहल के अधीन था, इसलिए राजा कंतूहल को हर वर्ष लगान (टैक्स) देता था। चंद्रहास बड़ा होकर बहुत चतुर, न्यायकारी और बलवान बना। अतः उसके पड़ोसी राजा उसकी शोभा और बहादुरी के बारे में सुनकर उससे प्रभावित हुए। राजा कुलिंद का दूत नियम अनुसार वार्षिक लगान लेकर धृष्टबुद्धि के पास जाता था, परंतु इस बार कुछ खास उपहार भी साथ ले गया। उस दूत ने जाकर राजा

कुलिंद को मिले सुयोग्य पुत्र चंद्रहास की प्रशंसा राजा धृष्टबुद्धि के सामने की। जब धृष्टबुद्धि ने सुना तो उसे पक्का निश्चय हो गया कि ऐसा बालक वही हो सकता है, जिसको मारने की कोशिश मैंने की थी। धृष्टबुद्धि अंदर से तो बहुत ईर्ष्या से भर गया, परंतु बाहर से कुछ न बोला। वह अपने मंत्री कुबुद्धि से परामर्श करके राजा कुलिंद के देश चला गया। जब उसने चंद्रहास को देखा, तो उसे और भी पक्का यकीन हो गया कि यह वही बालक है। दो दिन वहाँ रहने के पश्चात उसने एक दिन राजा कुलिंद को कहा कि यह गद्दी हमेशा राजा कंतूहल की इच्छा के अनुसार चलती आई है, इसलिए मेरी सलाह है कि चंद्रहास मेरे बेटे मदन के साथ जाकर राजा कंतूहल को मिलकर आए और वार्षिक लगान भी स्वयं दे आए। राजा कुलिंद को कोई संदेह नहीं था, इसलिए उसने चंद्रहास को भेजने की बात मान ली।

धृष्टबुद्धि ने बेटे मदन के नाम एक चिट्ठी लिखकर चंद्रहास को दे दी, जिसमें लिखा था कि चंद्रहास बहुत शूरवीर राजकुमार है। इसने कई राजाओं का राज्य कुछ ही दिनों में जीत लिया है। मुझे भी इससे खतरा लग रहा है, इसलिए पहुँचते ही इसे विष (जहर) देकर काम समाप्त कर दो। चंद्रहास चिट्ठी लेकर धृष्टबुद्धि के शहर के बाहर एक बगीचे में ठहर गया। बहुत थकान के कारण उसे गहरी नींद आ गई। कुछ समय पश्चात धृष्टबुद्धि की बेटी विषया सदैव की तरह सैर करने के लिए आई और उस युवक चंद्रहास को सोया हुआ देखकर, रुक गई। चंद्रहास का रंग-रूप देखकर विषया मोहित हो गई। उसने अपने मन में प्रण कर लिया कि मैं इस नौजवान से ही शादी करूँगी। जबकि उसे मालूम भी नहीं था कि यह कौन है, कहाँ से आया है और क्या करने आया है? विषया धीरे-धीरे चलकर उसके नज़दीक पहुँची, तो देखा कि उसकी जेब में से एक पत्र बाहर निकला

हुआ है जोकि देखने से लगता है कि मेरे पिताजी का लिखा हुआ है। उसने सोचा कि मैंने इसको अपना पति माना है तो इसकी चिट्ठी पढ़ने में कोई पाप नहीं है। ऐसा सोचकर उसने पत्र पढ़ा तो बहुत डर गई क्योंकि उसमें लिखा हुआ था कि इस नौजवान को पहुँचते ही विष दे दो। वह परेशान होकर सोचने लगी कि अब क्या करूँ? परमात्मा ने अपने भक्त की रक्षा के लिए इस राजकन्या के मन को प्रेरणा दी कि तेरा नाम विषया है। यदि तू 'विष' के पीछे 'या' लगा दे तो विष से विषया बन जाएगा। लड़की ने वह अक्षर बनाने की बात सोच ली, परंतु वहाँ न स्याही थी, न ही कलम। ईश्वर ने उसे सुझाव दिया कि सरकण्डा (घास) की कलम बनाकर और आँखों के काजल की स्याही बनाकर लिख दे। उसने उसी समय वैसा ही किया और घास को काजल से भरकर 'विष' अक्षर को 'या' लगाकर 'विषया' बना दिया। वह बहुत खुश हुई कि ईश्वर ने इस नौजवान युवक की रक्षा कर ली और मेरा संकल्प भी पूरा हो जाएगा। फिर वह पत्र उसकी जेब में डालकर वापस राजमहल में जा पहुँची।

चंद्रहास जब जागा, तो उसने महल में पहुँचकर वह पत्र राजा के पुत्र मदन को दे दिया। मदन ने पत्र पढ़कर चंद्रहास को प्रेम से गले लगा लिया। उसका तेजस्वी चेहरा देखकर खुशी से कहने लगा कि हमारे भाग्य बड़े अच्छे हैं, जो तेरे जैसा सुंदर युवक हमारे पिता ने अपनी बेटी के लिए चुना है। चंद्रहास को बिठाकर मदन अपनी माँ के पास गया। माता को पत्र दिखाकर सारी बात पढ़कर सुनाई। वह सुनकर बहुत खुश हुई और पत्र अपनी बेटी विषया को भी दिखा दिया। विषया भी बहुत खुश हुई, परंतु लज्जा से उसने सिर नीचे कर लिया। सब लोग बड़े खुश हुए कि हमें ऐसा सुंदर और प्रतिभा-वान वर राजकन्या के लिए परमेश्वर ने दिया है। राजपुरोहित को बुलाया

गया, तो उसने भी लगन देखकर वही दिन शादी करने के लिए शुभ बताया। इसलिए उसी दिन बड़े उत्साह और खुशी से शादी कर दी गई। मदन भी बहुत खुश हुआ कि मैंने पिताजी की आज्ञा के अनुसार इसे विषया दे दी है। मदन ने यह खुशी की बात पत्र में लिखकर, ऊपर केसर लगाकर एक दूत के हाथ अपने पिता के पास भेज दी। उसमें मदन ने लिखा था कि आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने पत्र पढ़ते ही बहन विषया चंद्रहास को दे दी अर्थात विषया का विवाह चंद्रहास के साथ कर दिया।

जब यह पत्र धृष्टबुद्धि ने पढा, तो उसका रंग एकदम पीला पड़ गया और सोचने लगा कि मैंने लिखा कुछ और था परंतु कर दिया कुछ और। राजा कुलिंद से विदा होकर राजा धृष्टबुद्धि अपने मंत्री कुबुद्धि सहित वापस राजधानी पहुँचा। हर तरफ ढोल-धमाके हो रहे थे। वह समझ गया कि चंद्रहास और विषया की शादी के जश्न हो रहे हैं और सब लोग एक-दूसरे को बधाइयाँ दे रहे हैं। सब ने आकर राजा को भी बधाई दी परंतु वह बधाइयाँ राजा के मन में तीर की तरह चुभ रही थीं। राजा अंदर से दुखी था और बिल्कुल चुप था। बहुत दुखी होकर महल में पहुँचा और मदन को बुलाकर पूछा कि यह क्या किया? मैंने तो उसे विष देने के लिए लिखा था, परंतु तूने अपनी बहन विषया दे दी। यह सुनकर मदन चिंता में डूब गया और डरते-डरते उसने वह पत्र पिताजी को दे दिया। जब राजा ने पत्र में विष के स्थान पर विषया लिखा देखा तो अपनी किस्मत पर रोने लगा।

फिर कुछ समय पश्चात बेटे मदन को राजा कंतूहल की बेटी चंपका के स्वयंवर में भेज दिया और उसने अपने मंत्री कुबुद्धि के साथ सलाह की कि अब भी चंद्रहास को किसी योजना से मार दिया जाए। जल्लादों को बुलाकर उसने हुक्म दिया कि आज रात के पहले

पहर में बाग के पास वाले दुर्गा देवी के मंदिर में जो भी व्यक्ति पूजा करने आए, उसे मारकर टुकड़े-टुकड़े कर देना, चाहे वह कोई भी हो। इसके बाद चंद्रहास को बुलाकर कहा कि हे बेटा! तू हमारे कुल की मर्यादा के अनुसार आज शाम को पूजा का सामान लेकर शहर के बाहर जो देवी का मंदिर है, वहाँ पूजा करने के लिए जाओ। चंद्रहास राजा के कहे अनुसार मंदिर जा रहा था, तो रास्ते में उसे मदन मिल गया। मदन ने चंद्रहास को कहा कि कृपा करके राजा कंतूहल के महल में उसकी बेटी चंपका के स्वयंवर के लिए जाओ। उस राजकुमारी ने किसी को भी अपने पति के रूप में नहीं चुना। उसने तेरे गुणों की बहुत प्रशंसा सुनी है। वह तेरे अलावा किसी को भी पति नहीं चुनेगी और राजा कंतूहल ने भी मुझे कहा है कि चंद्रहास को किसी रथ पर बिठाकर यहाँ भेजो। इस बात से चंद्रहास को हैरानी हुई और खुशी भी हुई कि मेरा सौभाग्य! जो राजा कंतूहल ने मुझे बुलाया है। चंद्रहास ने मदन को बताया कि मुझे आपके पिता की आज्ञा पूरी करने के लिए कुल की मर्यादा अनुसार देवी पूजा के लिए मंदिर पहुँचना है। मदन ने कहा कि तू चिंता मत कर! मैं वहाँ जाकर तेरी ओर से पूजा कर लेता हूँ, परंतु तू अभी इस रथ पर चढ़कर राजा कंतूहल के पास जा! फिर वे दोनों अपने-अपने रथ बदलकर चले गए।

जब मदन पूजा करने के लिए देवी मंदिर के पास पहुँचा, तो वहाँ पहुँचते ही जल्लादों ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया और वहाँ से भाग गए। उधर चंद्रहास राजा कंतूहल के महल में पहुँचा, तो राजा कंतूहल, रानी और राजकुमारी चंपका बड़े खुश हुए। उसी रात राजकुमारी से उसकी शादी कर दी। चंद्रहास ने दूसरे दिन धृष्टबुद्धि के शहर वापस जाने की आज्ञा माँगी, तो लाचार होकर राजा ने

आज्ञा दे दी। चंपका और चंद्रहास दोनों जाकर राजा धृष्टबुद्धि और विषया से मिले। जब राजा ने चंद्रहास को जीवित देखा, तो उसका रंग फीका पड़ गया और पूछने लगा कि मदन कहाँ है? इस पर चंद्रहास ने बताया कि मदन ने मुझे कल शाम के समय रथ पर चढ़ाकर राजा कंतूहल के पास भेजा था और वह खुद मेरी जगह पर मंदिर में पूजा करने चला गया था। उसके बाद मुझे पता नहीं कि वह कहाँ है? ये सुनकर धृष्टबुद्धि हाय! हाय! करके विलाप करने लगा और बेहोश होकर गिर पड़ा। जब होश में आया, तो एकदम दौड़ता हुआ देवी के मंदिर में पहुँचा, जाकर देखा कि बेचारे मदन के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हुए पड़े थे। धृष्टबुद्धि जोर-जोर से रोने लगा। वह विलाप करता हुआ कह रहा था कि मेरे पाप ही मेरे आगे आ रहे हैं। ऐसा कहकर उसने खुद को अधमरा कर लिया और थोड़ी देर बाद मर गया। देखने वाले लोग भी रोने लगे। नगरवासी भी इकट्ठे हो गए और प्रजा ने मदन के लिए बहुत अफसोस किया और राजा को बुरे कर्मों के लिए फटकारें सुनाईं।

चंद्रहास का मदन के साथ बहुत प्रेम हो गया था, इसलिए उसने दृढ़ संकल्प, पूर्ण श्रद्धा और धैर्य के साथ देवी की पूजा करके विनती की कि हे भगवती! कृपा करके मदन और राजा को जीवित कर दो। उसकी प्रार्थना पर देवी खुश हुई और कहा, हे भक्त! ये राजा धृष्टबुद्धि बहुत पापी है। इसने तुझे मारने के लिए बहुत यत्न किए हैं, फिर भी तू इसे जीवित करने के लिए क्यों कह रहा है? चंद्रहास ने विनती की कि हे जननी! मेरा किसी से कोई वैर नहीं है। हर कोई अपनी बुद्धि के अनुसार चलता है। हे माता! कृपा करके इनको ज़िंदा कर दो। इस तरह अपने भक्त का प्रेम देखकर देवी खुश हुई तब उसने अमृत छिड़क कर राजा धृष्टबुद्धि और उसके बेटे मदन को

जीवित कर दिया। फिर देवी धृष्टबुद्धि को उपदेश देने लगी कि हे राजा! ये सब इस भक्त की महिमा है, जिसकी कृपा से तू फिर जीवित हुआ है। तेरे भाग्य बड़े अच्छे हैं, जोकि यह भक्त तेरा दामाद है। तू इसके चरण पकड़कर पश्चाताप कर कि फिर कभी भी इसकी बुराई नहीं करेगा। उसी समय मदन को जीवित देखकर धृष्टबुद्धि बहुत हैरान हुआ और देवी के उपदेश के अनुसार चंद्रहास के चरणों में गिर पड़ा और उसकी उपमा (प्रशंसा) करके अपने अपराधों की क्षमा माँगी।

संत दोखी का थाउ को नाहि।।

नानक संत भावै ता ओइ भी गति पाहि।।

यथा–

संत की निंदा दोख महि दोखु।।

नानक संत भावै ता उस का भी होइ मोखु।। (अंग २७६)

चंद्रहास ने पिता समझकर उसे अपने गले लगाया। इस घटना से चंद्रहास का बहुत यश फैला। जब राजा कुलिंद को इस बात की सूचना मिली तो वह रानी के साथ अपने पुत्र को मिलने के लिए आया। जिन ऋषियों ने चंद्रहास का पालन-पोषण किया था, दैवयोग से वे भी वहाँ आ पहुँचे। ऋषियों ने सारी बात सुनकर राजाओं से कहा कि हे राजन! ये चंद्रहास राजा सुधर्म का ही पुत्र है, जिसको तीन वर्षों तक छिपाकर दासी हमारे पास रहकर पालती रही थी। इसने हमारे उपदेश के अनुसार परमेश्वर का भजन किया था। उसके बाद ही यह राजा कुलिंद को मिला था। चंद्रहास ने उन ऋषियों के चरणों में नमस्कार की और हाथ जोड़कर उन गुरुजनों और परमेश्वर की उपमा की। सभी लोग धन्य-धन्य कहने लगे। उसके बाद नगर में साधु-संतों की बहुत सेवा होने लगी। साधुओं की संगति में बैठकर

लोग नाम जपने लगे। इस घटना से पता चलता है कि जब चंद्रहास गुरुमुख बना, परमात्मा के सम्मुख हुआ, तो सारी विपत्तियों को पार कर गया, परंतु धृष्टबुद्धि मनमुख होने के कारण दुखी हुआ और परमात्मा से विमुख रहा और अपने बुरे कर्मों के लिए रोता रहा।

दृष्टांत २- एक बार किसी राजा ने साधु-संतों के लिए भंडारा किया और भक्त जयदेव को निमंत्रण दिया। साधुओं को भोजन कराके यथायोग्य दान दिया, परंतु जयदेव ने कोई भी भेंट लेने से इंकार कर दिया। राजा ने बहुत प्रार्थना करके कुछ मोहरें भक्त जयदेव को दे दीं और वह मजबूरन मोहरें लेकर जंगल की ओर चल पड़ा। उसी रास्ते से चार चोर जा रहे थे। जयदेव को देखकर उन्होंने उसे लूटने का निश्चय किया। जयदेव ने उन्हें बहुत ज़रूरतमंद समझकर स्वयं ही वे मोहरें उनको दे दीं। वह चोर खुश होकर चलने लगे परंतु उनमें से एक चोर को शक हो गया कि कहीं यह हमें पकड़वा न दे, इसलिए इसे मार देना ही ठीक है। फिर सोचा कि इसे मारते नहीं, बल्कि इसके हाथ-पैर काटकर इसे किसी कुएँ में फेंक देते हैं और ऐसा किया भी गया। जयदेव ईश्वर की आज्ञा में रहकर वहीं जाप करता रहा। कुछ समय बाद एक राजा शिकार करने के लिए आया और उसी कुएँ के पास से गुज़रा। कुएँ में से 'राम' नाम की आवाज़ सुनकर सोचा कि कुएँ में कोई आदमी है। उधर जयदेव को भी पता चल गया कि कुएँ के पास कोई आदमी आया है। जयदेव ने बाहर निकालने के लिए उस से प्रार्थना की। राजा ने उसी समय रस्सी से जयदेव को बाहर निकाल दिया। जब राजा ने जयदेव के अंग कटे हुए देखे, तो उसका कारण पूछा परंतु भक्त जयदेव ने कुछ भी न बताया, केवल यही कहा कि मुझे अपने कर्म के अनुसार यह दुख मिला है। वह राजा भी धर्मात्मा और संत-सेवी था। वह जयदेव

को संत समझकर अपने महलों में ले गया और उसकी सेवा करने लगा। जयदेव का ऊँचा जीवन और रहन-सहन देखकर राजा की श्रद्धा दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। राजा ने जयदेव को आए-गए साधु-संतों की सेवा आदि का प्रबंध करने का काम सौंपा, क्योंकि संत को ही संतों की मान-मर्यादा के बारे में ज्ञान होता है।

एक दिन वही चारों चोर साधुओं का वेश धारण करके राजा के पास आए, क्योंकि उन्हें कई दिनों से चोरी का माल नहीं मिला था। नौकरों ने नियम के अनुसार उन्हें जयदेव के पास भेज दिया। जयदेव ने एकदम पहचान लिया कि ये तो वही चोर हैं, जिन्होंने मुझे कुएँ में फेंका था। यह जानते हुए भी जयदेव ने राजा को बताया कि ये चारों ही पूर्ण महात्मा हैं और मेरे परम मित्र हैं, इसलिए आप इनकी जो भी सेवा कर सकते हो, वह करो। राजा ने भक्त जयदेव के कहने पर अनेक नौकर उनकी सेवा के लिए लगा दिए-

उमा संत कई इही बड़ाई।
मंद करत सों करही भलाई।। **(रामचरितमानस)**

शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती! संत की यही बड़ाई (बड़प्पन) है कि वे बुरा करने वालों के साथ भी भलाई करते हैं।

उधर उन चोरों ने भी जयदेव को पहचान लिया और डर गए कि कहीं यह हमें मरवा ही न दे, क्योंकि बुरे इंसान को सदैव बुराई ही सूझती है। दूसरों से अधिक अपनी सेवा होती देखकर वह हैरान हो गए कि पता नहीं यह हमारी इतनी सेवा क्यों करा रहा है? इस शंका के कारण उन्होंने वहाँ से शीघ्र चले जाने का विचार किया। जयदेव और राजा ने उन्हें कुछ दिन और रुकने के लिए कहा, परंतु वे डरे हुए थे कि कहीं जयदेव उनसे बदला ना ले ले। इसलिए वे उसी समय जाने के लिए तैयार हो गये। जयदेव ने उनको राजा से बहुत दक्षिणा

और अन्य वस्तुएँ दिलवाईं और रास्ते में सुरक्षा के लिए कुछ नौकर उनके साथ भेज दिए।

कबीर संतु न छाडै संतई जउ कोटिक मिलहि असंत।।
मलिआगरु भुयंगम बेढिओ त सीतलता न तजंत।।

(अंग १३७३)

महल से निकलकर जब शहर से बाहर निकले तो राजा के नौकरों ने उनसे पूछा कि जयदेव ने आपकी विशेष सेवा की है, इसका क्या कारण है? चोरों ने कहा कि जयदेव ने कुछ समय पहले एक राजा के महल में चोरी की थी। जिस कारण राजा ने उसके हाथ-पैर कटवाकर उसे कुएँ में फेंकवा दिया था। इस बात का हमें मालूम था इसलिए जयदेव हमसे डरता था कि कहीं यह बात हम राजा को न बता दें, इसलिए वह हमारी सेवा सबसे अधिक करता था परंतु यहाँ तो यह महात्मा का रूप धारण करके बैठा है। जब वह जयदेव की इस प्रकार निंदा करने लगे तो परमात्मा से अपने भक्त की निंदा सहन न हो सकी, इसलिए ज़मीन फट गई और चारों चोर वहीं दब कर मर गए। नौकरों ने वापस आकर राजा और जयदेव को सारी बात सुनाई। यह सुनकर जयदेव को बहुत दुख हुआ और उसने अपने हाथ मलने तथा पैर पसारने की कोशिश की तो सचमुच ही नए हाथ-पैर उसके शरीर पर आ चुके थे। राजा ने यह आश्चर्य देखकर इसका कारण पूछा। पहले तो जयदेव ने कुछ भी बताने से मना कर दिया परंतु राजा के बहुत ज्यादा पूछने पर जयदेव ने उसे सारी घटना सुना दी। चोरों के बुराई करने के पश्चात भी जयदेव ने उनके साथ भलाई की और परमात्मा के सम्मुख हुआ। चोर जिन्होंने अपराध और निंदा की थी, वे परमात्मा से विमुख होने के कारण नष्ट हो गए। यह है गुरुमुख का सम्मुख होना और मनमुख का बेमुखीआ

(विमुख) होना।

प्रश्न 18 व 19. किनि बिधि मिलीऐ किनि बिधि बिछुरै

उत्तर-गुरमुखि मिलीअै मनमुखि विछुरै भाव यह है कि गुरुमुख ईश्वर के साथ मिल जाता है और मनमुख ईश्वर से दूर हो जाता है। किसी भी सत्संग में या संतों के पास जाकर यही प्रश्न किया जाता है कि परमात्मा से मेल कैसे हो ? इस प्रश्न का उत्तर गुरु साहिब ने थोड़े शब्दों में यही दिया है कि जब हम विषयों की आसक्ति छोड़कर गुरुमुख बनेंगे, तभी परमात्मा की प्राप्ति होगी, नहीं तो विषयों में आसक्त (फँसा) हुआ मनुष्य मनमुख बनकर सदैव ही परमात्मा से बिछुड़ा रहता है।

दृष्टांत १- एक महात्मा ने अपने गुरुमुख सेवक के साथ तीर्थ यात्रा पर जाने की तैयारी की। एक और आदमी, जो मनमुख था, उनके साथ चलने के लिए बार-बार विनती करने लगा। दयालु महात्मा ने सोचा कि शायद इसका भी उद्धार हो जाए, इसलिए उस मनमुख को भी साथ ले लिया। एक रात किसी गाँव में ठहरे। अगले दिन जब वहाँ से चलने लगे, तो वहाँ के प्रेमियों ने विनती की महाराज! आगे कोई गाँव नज़दीक नहीं है, केवल जंगल ही है। हम आपको कुछ रोटियाँ बनाकर दे देते हैं, आप साथ ले जाओ। संतों ने उनका प्रेम देखकर आठ रोटियाँ साथ ले लीं। संत और उनका शिष्य तो बड़े धीरज और संतोष वाले थे, परंतु तीसरा आदमी लोभी था। वे चलते-चलते थककर एक पेड़ के नीचे बैठ गए। महात्मा और उनका शिष्य दोनों जंगल की ओर चले गए। मनमुख ने स्वयं को अकेला समझकर सोचा कि आज बाकी दिनों से कुछ ज्यादा खाना खा लूँ क्योंकि इन दोनों के साथ तो भूखा रहना पड़ता है। यह सोचकर उसने आठ में से दो रोटियाँ खा लीं और सोचा कि बाकी

छह में से हिस्से अनुसार दो रोटियाँ तो और मिल ही जाएँगी। जब महात्मा और उनका शिष्य वापस आया, तो वे तीनों भोजन करने लगे। उन्होंने आठ की अपेक्षा छह रोटियाँ देखकर तीन हिस्से कर लिए और तीनों ने दो-दो रोटियाँ बाँटकर खा लीं।

भोजन करने के बाद महात्मा ने उस मनमुख से पूछा कि गाँव से तो आठ रोटियाँ बाँध कर लाए थे और अब छह ही मिली हैं, बाकी दो कहाँ गईं? मनमुख ने उत्तर दिया कि मुझे नहीं पता। आगे चले तो एक शेर आता हुआ दिखाई दिया। उसे देखकर मनमुख डर गया। संतों ने कहा कि डर मत, वाहिगुरु! वाहिगुरु! जपता हुआ चलता चल। शेर ने महात्मा को नमस्कार की और चला गया। इसके पश्चात महात्मा ने उस लोभी मनमुख से कहा कि जिस वाहिगुरु ने तुझे शेर से बचाया है, तुझे उसकी कसम है, सच बता! वह दो रोटियाँ किसने खाई हैं? मनमुख का डर अब दूर हो चुका था और उसने कहा कि मुझे कुछ पता नहीं। खैर! महात्मा चुप रहे और आगे चल पड़े। रास्ते में एक नदी नज़र आई, जिसे देखकर मनमुख फिर डर गया कि भई! अब कैसे पार होंगे? संतों ने उसे उदास देखकर कहा कि भाई! कोई चिंता न कर, राम का नाम जपता रह और हमारे पीछे चला आ, तो नदी को सहज में आसानी से पार कर जाएँगे। मनमुख नाम जपता रहा और संतों के पीछे-पीछे चलता रहा। नदी का पानी नीचे उतर गया और वे बिना किसी कष्ट के पार हो गए। इस सम्बन्ध में श्री गुरु नानक देव जी ने जपु जी साहिब में फरमाया है-

सुणिअै हाथ होवै असगाहु।। **(अंग ३)**

यद्यपि संसार रूपी समुद्र से पार होना बहुत मुश्किल है, परंतु परमात्मा का नाम जपने से वह समुद्र भी हाथ जितना छोटा हो जाता है, अर्थात उसमें से भी आसानी से पार हुआ जा सकता है। जब

नदी से पार हो गए, तो संत जी ने मनमुख से पूछा कि जिस राम के नाम ने तुझे इस नदी में से आसानी से पार कराया है, तुझे उसकी कसम है, तू बता! वह दो रोटियाँ किसने खाई हैं? फिर भी मनमुख ने वही उत्तर दिया कि मुझे कुछ मालूम नहीं। संतों ने सोचा कि यह तो पक्का मनमुख है, इसे परमात्मा की कसम का भी डर नहीं परंतु अब इससे किसी भी तरह सच पूछना ही है और फिर इसका साथ भी छोड़ देना है। महात्मा ने सोचा कि यह मायाधारी (माया से प्रेम करने वाला) है, इसे माया का लालच देकर ही पूछना चाहिए। महात्मा ने अपनी योग शक्ति से एक पत्थर को सोने जैसा बना दिया जिसको देखकर लोभी का मन ललचा गया। उसने महात्मा से कहा, कृपा करके! मुझे यह सोने का टुकड़ा दे दो, ताकि मेरे बाल-बच्चों का गुज़ारा ठीक प्रकार से हो जाए। महात्मा बोले कि यह सोना तो चार बराबर हिस्सों में बाँटा जाएगा। मनमुख ने पूछा कि हम तो कुल तीन लोग हैं, चौथा हिस्सा किसके लिए है? महात्मा ने कहा, देख! एक हिस्सा तेरा, एक मेरे शिष्य का, एक मेरा और चौथा हिस्सा उसका है, जिसने वह दो रोटियाँ खाई थीं। यह सुनकर उस लोभी ने एकदम उत्तर दिया कि वह तो मैंने खाई थीं। ऐसा सुनकर महात्मा ने कहा कि परमात्मा की कसमें खाकर भी तूने सच नहीं बताया, परंतु माया के लालच में तू ने जल्दी से सच बता दिया। तू पक्का मनमुख है, तेरा और हम दोनों का इकट्ठे रहना मुश्किल है। अब तू सारा सोना लेकर चला जा! मनमुख खुशी-खुशी सोने की तरफ बढ़ा, तो क्या देखा कि सोना तो है ही नहीं, बस! पहले वाला पत्थर ही है। उसी समय संत जी और उनका शिष्य तेज़ी से आगे निकल गए और मनमुख संतों से बिछुड़ गया। इसे कहते हैं, गुरमुखि मिलीअै और मनमुखि विछुरै भाव कि गुरुमुख शिष्य तो साथ मिला रहा और

मनमुख अपनी मनमुखता के कारण बिछुड़ गया।

तत्पश्चात महात्मा अपने शिष्य को जो सदैव उनकी आज्ञा अनुसार चलता था साथ लेकर आगे चल पडे। चलते-चलते एक जंगल में रात हो गई। संत जी ने अपने शिष्य से कहा कि रात का समय है, यही ठीक होगा कि कुछ समय तू जाग और कुछ समय मैं जागूँ। पहले संत जी ने आराम किया और चेला जागता रहा। फिर शिष्य सो गया और संत जी जागते रहे। संत जी ने देखा कि एक साँप, शिष्य की ओर आ रहा है। संत महाराज जी ने उस साँप को संकेत करके अपनी ओर बुला लिया और कहा, भाई! तू इस ओर क्यों जा रहा है? तबही साँप को संत महाराज के दर्शन करके पिछले जन्म की याद आ गई। वह नमस्कार करके कहने लगा महाराज पिछले जन्म में यह साँप था और मैं आदमी था। इसने मेरी गर्दन का रक्त पीया था। मैं अब वही बदला लेने के लिए आया हूँ। संत जी ने साँप को कहा कि यदि तुझे इसकी गर्दन का रक्त पीने के लिए मिल जाए, तो तू खुश हो जाएगा? तेरा बदला भी पूरा हो जाएगा और आगे के लिए वैर-विरोध भी समाप्त हो जाएगा। नाग ने संत जी का यह वचन मान लिया। अब संत जी ने एक हाथ में छुरी लेकर अपने शिष्य की छाती पर पैर रखा। शिष्य की आँखें खुलीं, तो देखा कि गुरु जी छाती पर पैर रखकर हाथ में छुरी लिए खड़े हैं। यह देखकर उसने विचार किया कि यह शरीर मेरा नहीं है, मेरे गुरु जो भी करेंगे, मेरे भले के लिए ही करेंगे। यह सोचकर शिष्य ने आँखें बंद कर लीं। संत जी ने थोड़ा-सा खून उसकी गर्दन में से निकालकर साँप को पिला दिया और खून पी कर वह साँप तृप्त हो कर चला गया।

प्रातः होने पर संत जी ने शिष्य को कहा आओ अब चलें, रास्ते

में कोई नदी आएगी तो स्नान आदि करेंगे। नदी किनारे पहुँचकर चेला (शिष्य) स्नान करने लगा, तो गुरु ने उसके कपड़ों पर खून लगा हुआ देखकर पूछा कि तुझे पता है कि यह खून कैसे लगा? शिष्य ने कहा, हे दीन दयालु! मुझे और तो कुछ पता नहीं परंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो भी आप कर रहे हो, वह सब मेरे भले के लिए ही कर रहे हो। संत जी ने शिष्य को नाग वाली सारी बात बताई। शिष्य ने गुरु के चरणों पर नमस्कार करके कहा कि आप अपने सेवकों की रक्षा स्वयं ही करते हो। उसकी ऐसी वृत्ति देखकर संत महाराज ने प्रसन्न होकर उसे अपने गले लगा कर आत्म-ज्ञान करवा दिया और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करके परमेश्वर से मिला दिया। इसे कहा जाता है कि गुरमुखि मिलीअै क्योंकि गुरुमुख संत का मिलाप होने के कारण शिष्य का भी उद्धार हो गया।

प्रश्न 20. इह बिधि कउणु प्रगटाए जीउ।।

उत्तर-गुरमुखि बिधि प्रगटाए जीउ।।

गुरुमुख महापुरूष ही हैं जिनके पवित्र मुखारविंद से यह विधि प्रकट होती है कि व्यवहार में कैसे बर्ताव करना है? परमार्थ में किस तरह चलना है? गुरुमुख संतों के संग में जब यह जीव सच्चा उपदेश लेकर स्वयं गुरुमुख बनेगा, तभी इसको उस विधि की समझ आएगी। गुरुमुख जो कथा करते हैं, स्वयं वैसा बनकर दिखाते हैं। इस प्रकार दूसरे लोग भी उनके जीवन से प्रभावित होकर वैसा ही बनने की कोशिश करते हैं।

दृष्टांत १- एक बच्चा गुड़ बहुत खाता था। इस कारण उसके शरीर पर बहुत फोड़े-फुँसियाँ निकली हुई थीं। उसके माता-पिता ने बहुत समझाया, परंतु वह गुड़ (मीठा) खाना बंद नहीं करता था। अंत में माँ-बाप उसे एक महात्मा के पास ले गए और विनती की,

महाराज! दया करके इसकी गुड़ खाने की आदत छुड़वा दें। महात्मा बहुत गुरुमुख थे। उन्होंने विचार किया कि हमारा वचन (बात) इसके मन पर तभी प्रभाव डालेगा, यदि पहले हम स्वयं मीठा खाना बंद करदें। यह सोचकर संत जी ने बच्चे के माँ-बाप को कहा कि इसे आठ दिन बाद ले आना। उसी दिन से महात्मा जी ने मीठा खाना बंद कर दिया। आठ दिन बाद माता-पिता उस बच्चे को लेकर फिर महात्मा जी के पास आए। उन्होंने महात्मा से फिर वही विनती की, कृपा करो! बच्चा गुड़ खाना बंद कर दे। महात्मा ने उनकी बात सुनकर बच्चे को गुड़ न खाने का उपदेश दिया। वह उपदेश बच्चे के हृदय में तीर की तरह असर कर गया। क्योंकि जो गुरुमुख स्वयं पूरी कथनी और करनी की मर्यादा में रहते हैं, उनके वचन भी प्रभावशाली हो जाते हैं।

प्रायः परमार्थ (मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य) और प्रारब्ध (पूर्बले कर्मों का फल) के भेद को समझने में कठिनाई होती है कि परमार्थ में कैसे चला जाए और प्रारब्ध के निश्चय को व्यवहार में कैसे उतारा जाए? यह विधि गुरुमुख महात्मा के संग से ही प्राप्त होती है क्योंकि संतों का प्रारब्ध पर पूरा निश्चय होता है। वह शरीर की पालना करने के लिए कोई भी यत्न नहीं करते क्योंकि वे समझते हैं कि जिस प्रारब्ध के अनुसार यह शरीर मिला है, वह दाना-पानी, भोग अवश्य मिल जाएँगे। नाम जपने और भजन करने में अर्थात परमेश्वर की प्राप्ति के लिए जो भी उद्यम और पुरुषार्थ करने के लिए गुरु की आज्ञा है, वह अधिक से अधिक करते हैं। गुरुवाणी का फरमान है-

उदमु करहु वडभागीहो सिमरहु हरि हरि राइ।। (अंग ४५६)

यह बात प्रसिद्ध है कि भक्त कबीर, भक्त नामदेव और भक्त फरीद आदि संतों ने सदैव नाम जपने के लिए प्रयत्न किये और शरीर

की पालना के लिए प्रारब्ध पर ही विश्वास रखा था। परिणाम यह हुआ कि उन महापुरुषों ने लोक-परलोक दोनों को सुधार लिया। संसारी जीवों का निश्चय इसके बिल्कुल विपरीत होता है। यदि उन्हें कहा जाए कि भाई! मनुष्य जीवन, नाम जपने के लिए ही मिला है, नाम जपो! तो वो कहते हैं, यदि हमारे भाग्य में होगा, तो ही नाम जपा जाएगा। परंतु जब धन कमाने की बात आएगी, तो उद्यम करके, देश-विदेश की तकलीफें सहन करके भी धन कमाने लग जाते हैं। इस प्रकार शरीर और परिवार की पालना करने में सारा समय लगाकर संसार से चले जाते हैं। परिणाम यह निकलता है कि उनके लोक-परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। सूरज की ओर पीठ करने पर हमारी परछाईं आगे-आगे चलती है और पकड़ी नहीं जाती और सूरज की ओर मुँह करके चलने पर वही परछाईं हमारे पीछे-पीछे आती रहती है। इसी प्रकार गुरुमुख जो परमात्मा की ओर सम्मुख होकर चलते हैं, वे परमात्मा और माया दोनों को प्राप्त कर लेते हैं। मनमुख जोकि परमात्मा की ओर पीठ करके, विमुख (बेमुख) होकर चलते हैं उनको माया भी नहीं मिलती और परमात्मा भी प्राप्त नहीं होते।

दृष्टांत २- एक समय दो बीमार आदमी वैद्य के पास गए। उन्होंने बताया कि हमारे पेट में दर्द रहता है और आँखों के आगे धुँधलापन। वैद्य ने दोनों को दो-दो पुड़ियाँ दीं और समझाया कि यह पुड़िया पेट दर्द के लिए है और इसे पानी के साथ सेवन करना है। दूसरी पुड़िया आँखों में सुरमे (अंजन) की तरह डालनी है। उनमें से एक, जोकि समझदार था, उसने वैद्य के कहे अनुसार दोनों पुड़ियों का ठीक प्रकार से प्रयोग किया। उसका पेट दर्द और आँखों का धुँधलापन दोनों ठीक हो गए। दूसरा आदमी मूर्ख था, उसने बिन-सोचे पेट दर्द वाली दवाई आँखों में डाल ली और आँखों वाली दवाई पानी

के साथ ले ली। इस प्रकार वह पहले से भी ज्यादा परेशान हो गया। उसके रिश्तेदार फिर बीमार को वैद्य के पास लेकर आए और उसे बुरा-भला कहने लगे कि आपकी दवाई ने इसकी तकलीफ और बढ़ा दी है। वैद्य ने उसे धीरज दिया और दूसरे आदमी को बुलाकर पूछा कि आपका क्या हाल है? उसने कहा कि आपकी दी हुई दवाई लेने के बाद मेरा पेट दर्द और धुँधलापन दोनों ठीक हो गए हैं। वैद्य ने फिर पहले (नासमझ) मरीज से पूछा कि आपने दवाई कैसे-कैसे ली थी? उसने कहा कि यह पुड़िया मैंने पानी के साथ ले ली और दूसरी पुड़िया जो थी, वह मैंने आँखों में डाल ली। ये सुनकर वैद्य ने कहा कि आपने तो दवाई का प्रयोग ही गलत तरीके से किया है, बताओ! इसमें मेरा क्या दोष है? फिर जब वैद्य के कहे अनुसार सही विधि से दवाई का प्रयोग किया गया तो वह रोगी भी स्वस्थ हो गया। इसी प्रकार संसार में सतगुरु भी एक वैद्य समान ही हैं, जिनके पास जिज्ञासु और अन्य संसारी लोग आकर विनतियाँ करते हैं कि हमारा चित्त व्याकुल और मन चंचल रहता है। हमें परमार्थ के रास्ते पर चलने की समझ नहीं आती। आप कृपा करके हमारे इन दोनों रोगों का इलाज बताओ। संत जी दोनों को उपदेश देते हैं कि परमार्थ में पुरुषार्थ करना और संसार के कार्य-व्यवहार में प्रारब्ध (पिछले कर्मों के फल) पर यकीन रखना। परमात्मा ने हर एक जीव को पैदा करने से पहले उसकी रोज़ी-रोटी लिखी है-

पहिलो दे तैं रिजकु समाहा।। पिछो दे तैं जंतु उपाहा।।

(अंग १३०)

इसलिए निश्चिंत होकर परमात्मा की बंदगी में लगे रहना चाहिए। ऐसा करने से आपके लोक-परलोक दोनों सुधर जाएँगे। इन दोनों में से जो बुद्धिमान जिज्ञासु है, वह गुरु की आज्ञा अनुसार चलता है।

उसके लोक-परलोक दोनों सफल हो जाते हैं। संसार में आसक्ति (लगाव) रखने वाला जीव नाम जपने में बिल्कुल उद्यम नहीं करता, परंतु दूसरे काम-धंधे करने के लिए अनेक प्रकार के उद्यम करता रहता है जिस कारण उसे सुखों की प्राप्ति नहीं होती। कुछ समय बाद जब दोनों व्यक्ति संतों के पास आते हैं, तो वे दोनों का हाल-चाल पूछते हैं। जिज्ञासु सारा हाल सुना देता है कि आपजी की आज्ञा के अनुसार चलने से मेरा मन शाँत और बुद्धि संशय रहित हो गई है।

दूसरा संसारी पुरुष कहता है कि मुझे तो और भी अधिक परेशानी हो गई है। इस पर संत पूछते हैं कि हमारा उपदेश किस प्रकार व्यवहार में लाए थे? तो संसारी पुरुष कहने लगा कि महाराज काम-धंधे करने के लिए मैं बहुत परिश्रम करता हूँ और परमात्मा का नाम जपने के लिए तो समय ही नहीं मिलता। वैसे भी प्रभु का नाम तो भाग्य में होगा तभी जपा जाएगा। यह सुनकर महात्मा उसे फिर समझाते हैं कि हे भाई! तू हमारे कहने के बिल्कुल उलट चल रहा है, इसलिए तू सुखी नहीं हो सकेगा। अब तू हमारे कहे अनुसार परमार्थ के लिए मेहनत कर और काम-धंधे (व्यवहार) में प्रारब्ध पर भरोसा रखकर चल। ऐसा करने से तेरे लोक-परलोक दोनो सुधर जाएँगे। इस प्रकार गुरुमुख महात्मा संसार के जीवों को परमार्थ में उद्यम करने और व्यवहार करने में प्रारब्ध में निश्चय रखकर कर्म करने की युक्ति बताकर जन्म-मरण के दुखों से छुड़वा देते हैं। इसे ही कहते हैं कि- *गुरमुखि बिधि प्रगटाए जीउ* ।।

दृष्टांत ३- एक राजा के पास दो वज़ीर (मंत्री) थे। एक दीवानी (धन संबंधी) कार्यों के लिए और दूसरा युद्ध संबंधी कार्यों के लिए। इस प्रकार राज्य का प्रबन्ध ठीक प्रकार से चल रहा था। कुछ वर्षों बाद राजा को विचार आया कि ये दोनों बहुत समय से एक ही काम

करते चले आ रहे हैं। इनकी बदली की जाए तो ठीक रहेगा। राजा ने दोनों मंत्रिओं को आपस में बदल दिया। परिणाम स्वरुप राज-प्रबन्ध की सारी व्यवस्था बिगड़ गई। मौके का लाभ उठाते हुए किसी दूसरे राजा ने देश पर आक्रमण कर दिया और उस राजा को अपना दास बना लिया। इसी प्रकार मन रूपी राजा के भी दो मंत्री हैं। एक पुरुषार्थ और दूसरा प्रारब्ध। जो गुरुमुख हैं, वे नाम जपने, सत्संग और शुभ कर्म करने के लिए पुरुषार्थ करते हैं और व्यवहार में प्रारब्ध के निश्चय से काम लेते हैं। जिस कारण, वे अपने लोक-परलोक दोनों सुधार लेते हैं, परंतु मनमुख उससे विपरीत काम करते हैं और परिणाम यह होता है कि दोनों ओर से ही दुखी रहते हैं। फलस्वरुप काम, क्रोध आदि शत्रु उनके मन को वश में कर लेते हैं। इसलिए वास्तव में जीवन गुज़ारते हुए हमें प्रारब्ध पर निष्ठा रखना चाहिए और परमार्थ के लिए उद्यम करना चाहिए। जैसे कि गुरु फरमान है-

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ।।
सैल पथर महि जंत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ।।
(अंग १०)

भाव-हे मन! तू रोज़ी-रोटी के लिए उद्यम और चिंता क्यों करता है? जबकि तेरी रोज़ी-रोटी परमेश्वर के जिम्मे है, जो सूखे पत्थर (जिसमें पानी जाने की भी क्षमता नहीं होती) जीव पैदा करके उनको रोज़ी-रोटी देता है गुरवाणी में फरमान है-

सरंजामि लागु भवजल तरन कै।।
जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै।। **(अंग १२)**

भाव-संसार रूपी महासागर से पार होने के लिए उद्यम कर, नहीं तो तेरा जन्म माया के रंग-तमाशों में बेकार चला जाएगा। यदि आप ऊपर बताई विधि से अपना जीवन बिताओगे तो लोक-परलोक सफल

हो जाएँगे, नहीं तो दोनों लोक हाथ नहीं आएँगे। परंतु यह युक्ति किसी पूर्ण गुरुमुख महापुरुष से ही मिलती है, जो इस जीव को सदमार्ग पर चला देता है।

दृष्टांत ४- श्री गुरु अर्जन देव जी के समय एक सिख लकड़ियाँ बेचकर अपना परिवार पालता था। उसे भ्रम था कि मैं कुछ धन आदि की कमाई करूँगा तो ही मेरा परिवार पलेगा, नहीं तो वे भूखे मर जाएँगे। एक दिन वह गुरु जी के दर्शनों के लिए गया। अंतर्यामी गुरु जी ने उसे कोई सेवा करने के लिए कहा, तो उस सिख ने कहा कि हे मालिक! मेरे परिवार के लोग मेरा इंतजार करते होंगे। जब मैं घर जाऊँगा, राशन खरीदकर दूँगा, तभी उनका पालन-पोषण होगा। गुरु साहिब जी ने समझाया कि हे भाई! यह विचार मन से निकाल दे कि तू उनकी पालना कर रहा है। जो ईश्वर तुझे पैदा करके रोज़ी-रोटी दे रहा है, वही ईश्वर सबकी पालना करता है। तू परमेश्वर पर भरोसा रख, जिसने यह शरीर पैदा किए हैं, उसने रोज़ी-रोटी का प्रबंध भी किया हुआ है। जैसा कि गुरु जी का फरमान है-

सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुर काहे मन भउ करिआ।।

(अंग १०)

भाव-परमेश्वर ने हर एक व्यक्ति के लिए रोज़ी-रोटी लिखी हुई है। हे जीव! तू डरता क्यों है? गुरु जी के समझाने के बाद भी उस सिख को भरोसा ना आया। फिर गुरु साहिब जी ने ख्याल किया कि इसकी भलाई के लिए इसे किसी तरह इस बात का निश्चय करवाना ही चाहिए। गुरु जी ने एक पत्र लिखकर उस सिख को दी और कहा कि यह पत्र फलाँ (अमुक) जगह हमारे सिख को पहुँचाकर फिर तू अपने घर चले जाना। वह पत्र लेकर उस सिख के पास पहुँचा। उस आज्ञाकारी सिख ने पत्र पढ़कर कहा कि भाई! पत्र में गुरु साहिब जी

का हुक्म है कि तुझे दो महीने तक यहाँ नज़र-बंद (कारावास में) रखा जाए। अगर तू खुशी से मानकर यहाँ रहे, तो ठीक रहेगा नहीं तो हमें जबरदस्ती करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। यह सुनकर लकड़हारा रोने-पीटने लगा। वह कहने लगा, अफसोस! मेरे साथ गुरु जी ने धोखा किया है। अब तो मेरे बच्चे ज़रूर ही भूखे मर जाएँगे। मेरे बिना उन्हें कौन खिलाएगा? परंतु विवश होकर उसे वह समय वहाँ बिताना पड़ा। उस आज्ञाकारी सिख ने गुरु जी की आज्ञा अनुसार उसे पहरेदारों की निगरानी में रखा हुआ था।

उधर उसके परिवार वालों का हाल सुनो। जिस रात वह लकड़हारा घर नहीं पहुँचा उस रात जो भी राशन घर में था वही खाकर सो गए। सुबह हुई, पड़ोसियों को पता चला कि लकड़हारा घर नहीं पहुँचा। उनकी गरीबी की हालत के बारे में सबको पता ही था, इसलिए सब पड़ोसियों ने अपने-अपने घर से राशन और भोजन लाकर लकड़हारे के बच्चों को दिया। एक-दो दिन गुजरने के बाद जब देखा कि अब तक लकड़हारा घर नहीं पहुँचा, तो उस गाँव के मुख्या ने इनके घर राशन भेज कर खाने-पीने की व्यवस्था कर दी। उसके बेटे को रोजगार पर लगा दिया और शादी भी कर दी। थोड़े समय पश्चात उनकी जवान बेटी की भी शादी कर दी। पुराने मकान का सुधार करवा दिया। इस तरह लकड़हारे की पत्नी और उसके बच्चे सुख का जीवन बिताने लगे।

तू काहे डोलहि प्राणीआ तुधु राखैगा सिरजणहारु।।
जिनि पैदाइसि तू कीआ सोई देइ आधारु।।१।।
जिनि उपाई मेदनी सोई करदा सार।।
घटि घटि मालकु दिला का सचा परवदगारु।।२।।

(अंग ७२४)

वे सोचने लगे कि वह दरिद्र (भाग्यहीन) लकड़हारा जब तक घर में था तब तक हम सूखी रोटी के लिए भी तरसते रहे, परंतु जब से वह यहाँ से गया है, तब से हम बहुत सुखी हैं। वह दरिद्री हमारे पास वापस न ही आए, तो ठीक है।

इधर जब दो महीने का समय पूरा हुआ, तो उस सिख ने लकड़हारे को छोड़ दिया। वह सारे रास्ते रोता रहा कि मेरे बच्चे मर गए होंगे। मेरे बिना किसने उन्हें खाना दिया होगा? इस तरह सोचता हुआ जब वह घर पहुँचा, तो पहले वाली झोंपड़ी की जगह एक सुंदर मकान बना हुआ देखकर बड़ा हैरान हुआ और पड़ोसियों को पूछने लगा कि यह मकान किसका है? पड़ोसियों ने बताया कि यह घर आपका ही है। घर के लोगों ने जब उसकी आवाज सुनी और उसे घर की ओर आते देखा तो अंदर से दरवाजा बंद कर दिया। लकड़हारे ने बहुत आवाज़ें दीं और दरवाजा खट- खटाकर कहा कि मैं सारे परिवार को मिलना और देखना चाहता हूँ, दरवाजा खोलो। फिर भी उन्होंने दरवाजा न खोला। फिर पड़ोसियों ने घर के लोगों से दरवाजा खुलवाया। वह अंदर गया और अपने बच्चों की अच्छी हालत देखकर बहुत खुश हुआ। उसके मन का यह भ्रम कि मैं ही अपने बच्चों की पालना करता हूँ, दूर हो गया। उसे पक्का निश्चय हो गया कि परमात्मा ही सबको रोज़ी-रोटी देने वाला है।

सभना का मा पिउ आपि है आपे सार करेइ।। (अंग ६५३)

यथा-

नानक चिंता मति करहु चिंता तिस ही हेइ।।

जल महि जंत उपाइअनु तिना भि रोजी देइ।। (अंग ६५५)

बस! उसी समय परिवार का मोह त्याग दिया। वापस आकर श्री गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा और रो-रो कर विनती करने लगा कि

हे सच्चे पातशाह! मैं बिल्कुल भूला-भटका हुआ था। आप जी ने बड़ी कृपा की, जोकि मेरा अज्ञान दूर कर दिया। अब मैंने परिवार का मोह छोड़ दिया है। कृपा करके मुझे सदा के लिए अपनी पवित्र चरण-शरण में रख लो!

जो सरणि आवै तिसु कंठि लावै इहु बिरदु सुआमी संदा।।

(अंग ५४४)

परमेश्वर का यह बिरदु (धर्म-नीति) है कि जो कोई भी उसकी शरण में आता है, उसको गले लगा लेता है अर्थात क्षमा कर देता है। इस प्रकार गुरु साहिब की कृपा से उस सिख ने सेवा करके अपना जन्म सफल किया। गुरुमुख ऐसी विधि प्रकट करके अपने सेवकों को उपदेश देकर उनका कल्याण करते हैं। इसे कहते हैं- *गुरमुखि बिधि प्रगटाए जीउ* ।।

प्रश्न 21. कउणु सु अखरु जितु धावतु रहता।।

अर्थ-वह कौन-सा अक्षर है, जिसे ग्रहण करने से यह जीव जन्म-मरण में भटकने से शाँत और मुक्त हो जाता है?

उत्तर-गुरमुखि अखरु जितु धावतु रहता।।

भाव-जब यह जीव पूर्ण सतगुरु की शरण में आकर गुरुमुख पदवी प्राप्त करेगा, तभी सतिगुरु दया करके इसे ऐसा अक्षर (गुर शब्द-नामु) बताएगा, जिससे इसका मन शाँत हो जाएगा। जो भी गुरुमुख होगा, वही दुख और सुख में समान वृत्ति रख सकेगा। एक बार देवताओं, दैत्यों और मनुष्यों ने अपने आचरण में बहुत गिरावटें देखीं। इसलिए उन सब ने अपना-अपना एक-एक मुखिया चुनकर ब्रह्मा जी के पास उपदेश लेने के लिए भेजा। ब्रह्मा जी ने उन सब को एक ही अक्षर 'द' का उपदेश दिया और कहा कि आप एकांत में बैठकर इस के अर्थ पर विचार करो, फिर मेरे पास आना। देवताओं

ने विचार किया कि हम दिन-रात सुख भोगने में मस्त हैं, इसलिए हमारे लिए 'द' का अर्थ है- 'दमन' करना अर्थात इंद्रियों को विषय-भोगों की ओर जाने से रोकना। राक्षसों यानि दैत्यों ने 'द' का अर्थ यह समझा कि हमारा चित्त हमेशा कठोर रहता है, तो हमें यह उपदेश है कि हम 'द'-'दया' करें। मनुष्यों ने 'द' के उपदेश का अर्थ यह समझा कि हमें नेक कमाई करके, उसमें से 'द'-'दान' करना चाहिए।

दृष्टांत १- एक राजा को कुष्ठ रोग था। उसने अनेक उपचार किए, परंतु ठीक ना हुआ। लाचार होकर वह राजा एक संत जी के पास गया और रोग निवारण के लिए प्रार्थना की। संत जी ने कहा कि तू दान कर, तेरा रोग दूर हो जाएगा। संतों के कहने पर उसने बहुत दान किए, परंतु रोग न गया। राजा एक बार फिर संत जी के पास आया और कहने लगा कि मैंने बहुत दान किए हैं, परंतु मेरा रोग दूर नहीं हुआ। संतों ने कहा कि तूने कोई 'पूरा दान' नहीं किया। राजा ने संत जी से पूछा कि 'पूरा दान' का क्या अर्थ है? संत जी ने उत्तर दिया कि दूसरे का मन पूरा खुश कर देने वाला दान ही पूरा दान होता है। तू जाकर कोई पूरा दान कर, तो तेरा रोग ठीक हो जाएगा। एक दिन राजा ने एक बालक को रोते हुए देखा। राजा ने बालक की माँ से पूछा कि यह बच्चा क्यों रो रहा है? माँ ने बताया कि इसने एक बार लड्डू देखा था, उस दिन से हर रोज लड्डू ही माँगता रहता है। इसलिए मैं जहाँ भी लड्डू की भीख माँगने जाती हूँ, तो वह लोग मुझ पर हँसते हैं। एक दिन मुझे किसी दयालु पुरुष ने लड्डू दिया, मैंने बच्चे को दे दिया। बच्चा लड्डू को हाथ में लेकर बहुत खुश हुआ और खुशी से लड्डू को गेंद की तरह दोनों हाथों में अदल-बदल कर खेलने लगा। इस तरह खेलते-खेलते ही एक बंदर आया और इसके

हाथ से लड्डू छीन कर ले गया। उसी दिन से यह रोना बंद ही नहीं कर रहा है। यह सुनकर राजा ने नौकरों को हुक्म दिया कि लड्डुओं से भरा हुआ थाल लाओ। नौकर लड्डुओं का थाल लेकर आए और राजा के कहे अनुसार बालक को दे दिया। वह बालक जितने लड्डू खा सका उसने खा लिए और जितने हाथ में ले सका, ले लिए। भाव बालक का मन अति प्रसन्न हुआ अर्थात राजा का यह दान पूरा दान था जिसे परमात्मा ने कबूल किया और राजा को जो कुष्ठ का रोग था, वह दूर हो गया। दैत्यों के 'दया' वाले अर्थ भी इस प्रकार ठीक सिद्ध हुए कि भक्त प्रह्लाद राक्षसों के कुल में पैदा हुआ था। वह चित्त में दया धारण करके और परमात्मा का भजन करके मुक्त पदवी को पहुँचा। उसने ना केवल अपने परिवार का ही, अपितु और भी कितने ही लोगों का उद्धार कर दिया। भक्त प्रह्लाद की यह कथा किसी से भी छिपी नहीं है। इस प्रकार ब्रह्मा जी के 'द' अक्षर पर चलने के कारण उन सब का कल्याण हुआ।

दृष्टांत २– राजा भोज के पिता ने शरीर त्यागने से पहले अपने भाई 'मुंझ' को बुलाकर अपने पुत्र 'भोज' का हाथ उसे पकड़ा कर कहा कि भोज अभी छोटा है, मेरा अंतिम समय नज़दीक आ गया है; इसलिए तुझे ही इसका पालन-पोषण करना है। जब यह बड़ा हो जाए, तो इसको राजगद्दी दे देना। तब तक तू मेरी जगह राज-पाट चलाते रहना। राजा के मरने के पश्चात राज्य के प्रबंध का काम राजा का भाई मुंझ चलाने लगा और भोज विद्या पढ़ने लगा।

भोज थोड़े समय में ही ऐसा विद्वान बना कि उसका मस्तक तेज-प्रतापी हो गया। उसकी महिमा देखकर राजा मुंझ की नींद उड़ गई। उसने सोचा कि यह बालक तो जल्दी ही मुझसे राज-तख्त ले लेगा और फिर मुझे इसकी गुलामी करनी पड़ेगी। इस प्रकार मुंझ की

नियत बदल गई और उसने भोज को मरवाने का विचार बना लिया। मंत्री को हुक्म किया कि किसी भी तरीके से भोज को मार दो। मंत्री ने राजा को ऐसा कुकर्म न करने के लिए बहुत समझाया परंतु राजा अपनी ज़िद्द (हठ) पर अड़ा रहा। आखिर राजा के हुक्म का पालन करने के लिए मंत्री, उस बालक भोज को साथ लेकर जंगल में चला गया। वहाँ मंत्री ने भोज को राजा का हुक्म सुनाया। भोज ने कहा कि मैं आपको एक श्लोक लिखकर देता हूँ, जो आप मेरे चाचा को देना, फिर बेशक मुझे मार देना। मंत्री ने कहा कि यहाँ न स्याही, न कागज़ और न ही कलम है तो फिर तू लिखेगा कैसे? भोज ने बरगद (पौधे का नाम) के एक पत्ते के ऊपर, एक तिनके के साथ अपना खून लगाकर एक श्लोक लिखा–

मांधाता सु महीपतिः कृत युगे अलंकार भूतोगतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः
अन्ये चापि युधिष्ठिर प्रभृतयोयाता दिवं भूपते
नैके नापि समं गता वसुमती मुंज त्वया यास्यति।।

तात्पर्य–सतयुग में एक 'मांधाता' नाम का राजा हुआ है, जिसने तीनों लोकों को वश में किया हुआ था परंतु मरते समय वह पृथ्वी को अपने साथ न ले जा सका। त्रेता युग में रावण इतना प्रतापी राजा हुआ है कि जिसकी रसोई (भोजन बनाने का काम) सूरज, चाँद आदि देवता करते थे, पवन देवता झाड़ू लगाता था, अग्नि देवता उसके कपड़े धोता था और काल अथवा मृत्यु उसके पलंग के साथ बंधा हुआ था। उस रावण को मारने के लिए भगवान श्री रामचंद्र जी ने समुद्र के ऊपर पुल बनाया था परंतु वह दोनों (राम और रावण) इस संसार से कुछ भी अपने साथ नहीं लेकर गए।

द्वापर युग में युधिष्ठिर जैसे राजा भी इस पृथ्वी से अपने साथ

कुछ भी नहीं ले जा सके, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि हे मुंझ! तू संभवत (शायद) इस पृथ्वी को अपने साथ ही लेकर जाएगा, इसलिए तू इतना बड़ा पाप कर्म करने लगा है।

यह श्लोक पढकर तुरंत मंत्री के हृदय में एक शुभ विचार उत्पन्न हुआ। वह भोज को कहने लगा कि हे पुत्र! तू कोई चिंता न कर। मैंने तुझे मारने का विचार ही छोड़ दिया है। तू यकीन कर कि जब तक मैं ज़िंदा हूँ तब तक तेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। तेरे जैसे विद्वान और श्रेष्ठ बालक को मारकर मैं अपना लोक-परलोक क्यों खराब करूँ? इस प्रकार भोज को साथ लेकर मंत्री अपने महलों में पहुँचा। भोज को एक कोठरी में ठहरा दिया और कोठरी के अंदर ही हर प्रकार का ज़रूरी बंदोबस्त कर दिया। बाहर निकलने की बिल्कुल मनाही कर दी।

राज दरबार में पहुँचकर मंत्री ने भोज का लिखा श्लोक राजा मुंझ को दे दिया। राजा ने जैसे ही श्लोक पढ़ा, तो तीर की तरह कलेजे में लगा। वह पछताने लगा कि मैं कितना बड़ा अपराध कर बैठा हूँ कि बेकसूर बालक, अपने भतीजे भोज को मरवा दिया। बेचैनी की हालत में राजा मुंझ बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ा। कुछ समय बाद जब होश आई, तो मंत्री को बुलाकर कहा कि या तो भोज को वापस लाओ, अन्यथा मेरी चिता बना दो। मंत्री ने कहा, हे राजन! अब भोज जीवित कैसे हो सकता है? अतः राजा ने स्वयं जलकर मर जाने की तैयारी करने का हुक्म दिया। उसी समय मंत्री ने राजा को कहा कि हे राजन! तू धैर्य रख! मुझे एक महात्मा जी की याद आई है जो मुर्दा को जीवित कर सकता है। अब भोज को फिर से जीवित करने का यही एक उपाय है। यह सुनकर राजा बहुत खुश हुआ और मंत्री को हुक्म दिया कि जल्दी से जल्दी उस महात्मा का पता

लगाओ। मंत्री ने पहले ही एक आदमी को समझा रखा था। उसने साधु का वेश धारण करके किसी युक्ति से अगले दिन भोज को राजा की सभा में उपस्थित कर दिया। राजा ने भोज को बहुत प्यार दिया और खुशी से उसकी आँखों में आँसू आ गए। उसने परमात्मा का बहुत धन्यवाद किया और उस साधु को भी बहुत ईनाम दिया। दूसरे दिन राजमहल में सब मंत्रियों, संबंधियों, जरनैलों, अधिकारियों की उपस्थिति में भोज को राज तिलक दे दिया और उसे राज-तख्त पर बिठाकर स्वयं प्रभु की भजन-बंदगी करने के लिए एकांत में चला गया। इस प्रकार उसने संतों की संगत में मिलकर अपना जन्म सफल किया। अब देखो कि इस गुरुमुख बालक के श्लोक रूपी अखर (अक्षर) ने क्या से क्या कर दिया? राजा मुंझ महापाप कर्म से बच गया और सत्संग करके मुक्त हुआ। इसलिए यह है- *गुरमुखि अखरु जितु धावतु रहता* ।।

प्रश्न 22. कउणु उपदेसु जितु दुखु सुखु सम सहता।।

वह कौन सा उपदेश है जिसके ग्रहण करने से यह जीव दुख-सुख को एक जैसा समझकर भोगता है?

उत्तर-गुरमुखि उपदेसु दुखु सुखु सम सहता।।

भाव कि गुरमुख दुख और सुख में समवृति रख सकेगा।

दृष्टांत-एक ब्राह्मण था, जो वेद-शास्त्र या दूसरी कोई भी विद्या नहीं जानता था। उसके परिवार का गुज़ारा भी मुश्किल से होता था। इसलिए उसने सोचा कि देश राजा से मांग कर कुछ दान ले लूँ। ऐसा सोचकर वह घर से निकल कर राजमहल की ओर चल पड़ा। चलते-चलते उसने एक जगह पर आराम किया। वहाँ एक इच्छाधारी योगी रहता था, जिसने नाग का वेश धारण करके, उस ब्राह्मण को दर्शन दिए और उससे पूछा कि कहां जा रहे हो? ब्राह्मण ने बताया

कि मैं राजा से दान लेने के लिए जा रहा हूँ। नाग ने पूछा कि कुछ शास्त्र विद्या भी जानते हो? उसने कहा, नहीं! तो नाग बोला कि यदि राजा ने आपसे पूछा कि कौन-सी विद्या जानते हो, तो जवाब देना कि मैं ज्योतिष विद्या जानता हूँ, परंतु मैं एक साल में सिर्फ एक ही प्रश्न का उत्तर देता हूँ। फिर राजा आपसे समय का हाल पूछेगा, तो आप उत्तर देना कि इस वर्ष अग्नि का ज़ोर रहेगा। शहरों, गाँवों और जंगलों में आग लगेगी और हर तरफ से आग से बचाओ! करने की पुकारें होंगीं। इसलिए सारे राज्य में पानी का पूरा प्रबंध रखना। यह बताकर वह नाग अपनी बांबी (बिल) में चला गया और ब्राह्मण राजा के नगर की ओर चल पड़ा। महलों में पहुँचा, तो राजा ने ब्राह्मण जानकर आदर-सत्कार किया। कुशल-क्षेम पूछने के बाद राजा ने कहा कि महाराज! आप कौन-सी विद्या जानते हो? ब्राह्मण ने नाग द्वारा समझाई हुई बात कह दी। राजा ने आग बुझाने के लिए पानी का प्रबंध करवा दिया। समय अनुसार आग लगनी शुरु हो गई परंतु पानी का सारा प्रबंध पहले ही कर लिया गया था, इसलिए जनता को बहुत कम कष्ट हुआ। बस फिर तो राजा ने ब्राह्मण को पूरा विद्वान समझकर अपने पास ही रख लिया और बहुत धन-पदार्थ आदि दिए। कुछ समय पश्चात ब्राह्मण ने राजा से छुट्टी माँगी, तो राजा ने धन आदि वस्तुएँ देकर विनती की कि कोई और काम हो तो बेझिझक बता दो। ब्राह्मण ने कहा कि मुझे सौ मज़दूर दे दो, जो मेरे साथ लकड़ियों के ढेर लेकर चलें। राजा ने सौ मज़दूरों और लकड़ियों का प्रबंध कर दिया। रास्ते में जहाँ नाग मिला था वहाँ उसकी बिल के ऊपर लकड़ियाँ रखवाकर आग लगवा दी ताकि वह नाग वहीं सड़ जाए और वह किसी दूसरे को यह बात ना बता सके। क्योंकि ब्राह्मण कृतघ्न हो गया था और नाग को उसने दुख पहुँचाया था, इसलिए

उसका धन शीघ्र ही समाप्त हो गया।

जब वह फिर भूखा मरने लगा, तो दुबारा राजा के पास जाने का विचार किया। फिर उसी रास्ते से गुजरता हुआ नाग की बांबी के पास पहुँचा और नाग ने दर्शन दिए। नाग को देखकर ब्राह्मण डर गया और समझा कि अब नाग मुझसे ज़रुर बदला लेगा, परंतु नाग तो इच्छाधारी योगी था, उसे ब्राह्मण के मन की सारी बात पता थी। उस नाग ने ब्राह्मण को कहा कि महाराज! आप कोई चिंता न करो, मुझे आपसे कोई वैर-भावना नहीं है। आप बताओ अब किधर जा रहे हो? ऐसी बात सुनकर ब्राह्मण का डर दूर हो गया और उसने बताया कि अब फिर राजा के पास ही जा रहा हूँ। नाग ने कहा कि इस बार आप राजा को बताना कि इस वर्ष पानी का ज़ोर रहेगा और सब जगह पर बाढ़ें आएँगी। यह सुनकर ब्राह्मण ने नाग को नमस्कार की और राजा के महलों में पहुँचा।

राजा ने विद्वान ज्योतिषी का बड़ा आदर-सत्कार किया और फिर नए वर्ष के बारे में पूछा। ब्राह्मण ने कहा, हे राजन! इस वर्ष पानी का ज़ोर रहेगा, नदियों में और सब जगह पर बाढ़ें आएँगी। इसलिए आपको जो उपाय करना हो, समय पर कर लेना। राजा ने ब्राह्मण के कहे अनुसार अपने देशवासियों को चेतावनी दे दी। कुछ समय बाद बहुत वर्षा हुई, नदियों के बाँध टूटने लगे और हर तरफ से बाढ़ से होने वाले नुकसान की खबरें आने लगीं। क्योंकि लोगों को इस प्रकोप (विपत्ति) के बारे में पहले से ही पता था और औपचारिक प्रबंध भी किया हुआ था, इसलिए बहुत ही थोड़ा नुकसान हुआ। अब तो राजा को पक्का विश्वास हो गया कि यह ब्राह्मण एक योग्य ज्योतिषी है। इसलिए उसने ब्राह्मण का आदर-सत्कार पहले से भी अधिक ध ान-पदार्थ देकर किया। जाते समय राजा ने कहा कि और कोई काम

तथा सेवा हो तो बताओ। इस बार ब्राह्मण ने कहा कि मुझे एक सौ पानी से भरी मश्कें (चमडे से बनी बडी थैली) और उन्हें उठाने के लिए एक सौ मज़दूर दे दो। राजा ने सारा प्रबंध कर दिया। ब्राह्मण ने उस नाग की बांबी के पास पहुँचकर सभी मज़दूरों को आदेश दिया कि पानी इस बांबी में डाल दो। इस प्रकार अपना काम करके वह मज़दूर चले गए। ब्राह्मण ने सोचा कि इतना पानी डालने पर वह नाग अब तो ज़रूर मर गया होगा। वह अकृतघ्न ब्राह्मण वापस घर पहुँच गया। कुछ समय राजा के दिए धन से मौज-मस्ती की।

जब धन खत्म हो गया तो फिर राजा के पास जाने का विचार किया। रास्ते में फिर वही इच्छाधारी नाग मिल गया। ब्राह्मण को देखकर नाग ने पूछा कि महाराज! क्या इस बार भी आप राजा के पास ही जा रहे हो ? ब्राह्मण के 'हाँ' कहने पर नाग ने पूछा कि इस बार राजा को क्या कहोगे? ब्राह्मण ने कहा कि इस बार फिर अग्नि की बारी है। यह बात सुनकर नाग ने कहा, नहीं! यह बात नहीं है। इस बार आप राजा को कहना कि इस वर्ष राज्य में शाँति ही रहेगी, सब जगह आनंद-मंगल होगा और प्रजा बहुत सुखी रहेगी। ब्राह्मण नाग से विदा होकर राजा के पास पहुँचा। राजा बहुत खुश हुआ और उसने आने वाले समय का हाल पूछा। ब्राह्मण ने बताया कि इस बार देश में शाँति रहेगी, प्रजा बहुत सुखी रहेगी और सब जगह आनंद-मंगल ही रहेगा।

ऐसा ही हुआ कि प्रजा को किसी भी तरह की कोई मुश्किल नहीं आई। राजा को अपने देश की खुशहाली देखकर यह पक्का यकीन हो गया कि यह ब्राह्मण बहुत ही आदरणीय तथा समझदार है। राजा ने ब्राह्मण को खूब धन- माल देकर खुश किया। विदा होते समय राजा ने कहा कि और भी कोई सेवा हो तो बताइए! ब्राह्मण ने कहा कि इस

बार मुझे दूध, शक्कर और पूजा का सामान दे दो। राजा ने सभी वस्तुएँ दे दीं। ब्राह्मण ने नाग की बांबी के नजदीक पहुँचकर राजा के नौकरों को हुक्म दिया कि यह सारा सामान, इस बांबी में डाल दो। नौकरों ने वैसा ही किया और वे वापस चले गए।

उसके बाद नाग अपनी बांबी से बाहर आया, जिसे देखकर ब्राह्मण ने नमस्कार की नाग ने पूछा कि हे महाराज! इस बार आप दूध और शक्कर क्यों लेकर आए हो? ब्राह्मण ने विनम्र हो कर क्षमा माँगी और रोते हुए कहा- मैं महापापी हूँ। आप ने मुझ पर दो बार कितनी कृपा की, तो भी मैंने उसके बदले में आपको दुख दिया। कृपा करके मेरे गुनाहों को क्षमा कर दो। ऐसा सुनकर इच्छाधारी योगी (नाग) बोला कि हे ब्राह्मण! कोई भी किसी को दुख या सुख देने वाला नहीं है। हर एक जीव अपना ही कर्म भोगता है। जब पहले वर्ष आग का ज़ोर हुआ तो मुझे भी दूसरे जीवों के साथ आग का ज़ोर देखना पड़ा था, क्योंकि तूने मेरी बांबी के पास खूब लकड़ियाँ इकट्ठी करके आग लगा दी थी। दूसरे वर्ष पानी का ज़ोर भी मुझे दूसरों के साथ सहन करना पड़ा, क्योंकि तूने पानी की पखालें भरवाकर मेरी बांबी में डलवा दी थीं। इस वर्ष जबकि सुख-शाँति का समय है, तो तूने मुझे दूध और शक्कर आदि भेंट किए हैं और पूजा भी की है, तो मुझे भी दूसरे जीवों के साथ ही शाँति मिली है। इसलिए मेरे सुखों या दुखों का कारण तू नहीं है। जो भी परमेश्वर कर रहा है या जो उसके हुक्म और इच्छा से हो रहा है, वह हमारे ही कर्मों का फल होता है।

यह उपदेश सुनकर ब्राह्मण बड़ा खुश हुआ और नाग को माथा टेक कर अपने देश की ओर चला गया। नाग की ऐसी अवस्था देखकर ब्राह्मण ने अपनी बुरी आदत छोड़कर समवृत्ति धारण कर ली और सुख-दुख को सामान्य समझ कर आनंद से रहने लगा। अब

वह दूसरों को भी यही उपदेश देने लगा कि खुशी-गमी, अनुकूलता-प्रतिकूलता और दुख-सुख आदि द्वंदों में समान वृत्ति रखो। यह है गुरुमुख का दुख सुख में सम सहता होना। इसे ही श्री गुरु महाराज जी ने कहा है- *गुरुमुखि उपदेसु दुखु सुखु सम सहता* ।।

प्रश्न 23. कउणु सु चाल जितु पारब्रहमु धिआए। वह कौन-सी चाल यानि युक्ति है, जिसके अनुसार परब्रह्म को याद किया जा सके यानि ध्यान में लाया जा सके?

उत्तर-गुरमुखि चाल जितु पारब्रहमु धिआए। पूरे सतगुरु को मिलकर यह जीव गुरुमुख बने। बस! यही चाल है जिस पर चलने से परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान किया जा सकेगा।

परमात्मा की आराधना करके गुरुमुख होना या गुरुमुख होकर प्रभु का ध्यान करना एक ही बात है। संसार में आकर प्राणी के लिए गुरुमुख होना और विशेष करके गुरुमुखों वाली चाल चलना यानि वैसा रहन-सहन रखना बहुत कठिन है। गुरुमुख जन इस संसार में परोपकार के लिए यानि दूसरों का भला करने के लिए आते हैं। उनकी साधना, तपस्या और नाम की कमाई इतनी अधिक होती है कि वह बुराई करने वाले के साथ भी भलाई करते हैं। इसी के बारे में भक्त शेख फरीद जी अपनी वाणी में जीव को उपदेश करते हैं कि-

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ।।
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ।। **(अंग १३८१)**

यथा-

फरीदा जो तै मारनि मुकीआं तिना न मारे घुंमि।।
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिना दे चुंमि।। **(अंग १३८१)**

व्याख्या-गुरमुखों जैसी रहनी (रहत) अति कठिन है। संसार में भलाई करने वाले के साथ भला तो हर कोई करता है और बुरे के

साथ बुरा भी हर कोई कर ही रहा है, परंतु बुरे के साथ भला करना अत्यंत कठिन साधना है। बुरे का भला तभी हो सकेगा, यदि बुराई करने वाले के प्रति बदले की भावना मन में ना आए। फलस्वरूप सूक्ष्म देह (शरीर) को विषय-विकार आदि रोग नहीं लगेंगे और मनुष्य जीवन का लक्ष्य मुक्त-पद की प्राप्ति पूरा हो जाएगा। कितनी कठिन साधना बताई है कि हे जीव! यदि कोई तेरे साथ बहुत बुरा व्यवहार भी करे, तो उसके बदले में कभी भूलकर भी बुरा करने की मत सोचना, बल्कि उसके साथ बड़ी नम्रता वाला व्यवहार करते रहना। कोई विरला प्राणी ही बुरे का भला कर सकता है परंतु ऐसा करने वाले साधक को कभी भी दुख नहीं सताएँगे। दूसरे का बुरा करने की भावना यदि तेरे चित्त (मन) में टिकी रही तो किसी हालत में भी सुख, चैन, शाँति आदि प्राप्त नहीं होंगे और सदा के सुख आत्म-सुख से वंचित (खाली) रह जाएगा। इस सिद्धांत की प्रौढ़ता श्री गुरु अर्जन देव जी महाराज ऐसे करते हैं-

पर का बुरा न राखहु चीत।।
तुम कउ दुखु नही भाई मीत।।

यह काम परमात्मा अपने प्यारे, भक्तों और गुरुमुखों से स्वयं ही करवाता है। उनके अतिरिक्त और कोई भी जीव अपनी हउमैं (अहंकार) वाली ताकत के साथ ऐसा नहीं कर सकता।

दृष्टांत १- एक संतोषवान महात्मा भिक्षा माँगकर अपना गुज़ारा करता था। उसका नियम था कि जब भिक्षा लेने के लिए किसी के घर जाता था, तो हरि नारायण बोलकर उस घर के दरवाज़े पर थोड़ा समय रुकता था। यदि उसी घर से भोजन मिल जाता, तो दूसरे दरवाज़े पर नहीं जाता था। एक बार उसने किसी घर के आगे जाकर हरि नारायण की आवाज़ दी, तो घर के अंदर से एक महिला ने रोटी

देने की अपेक्षा बुरा-भला बोलना शुरु कर दिया। वह महात्मा दयालु और शाँत चित्त वाला था। वह उस महिला को कुछ कहने की अपेक्षा, अगले घर से रोटी लेकर चला गया। दूसरे दिन फिर महात्मा ने उसी (महिला के) घर के आगे हरि नारायण का उच्चारण किया, तो उस महिला ने पहले से भी ज्यादा क्रोध में बुरा-भला कहा, परंतु संत जी फिर भी शाँत रहे और बिना कुछ कहे चले गए। तीसरे दिन महात्मा के मन में यह उपकारी विचार आया कि उस क्रोधी और कठोर चित्त वाली महिला का किसी भी तरह से उद्धार होना ही चाहिए। इसलिए संत जी ने आज फिर उसी घर के आगे जाकर भिक्षा माँगने का विचार मन में किया।

जिस समय संत जी उस घर के आगे पहुँचे वह महिला गोबर-मिट्टी से घर का चूल्हा-चौका लीप-पोत रही थी। महिला का स्वभाव क्रोध वाला तो था ही, इसलिए संत जी के हरि नारायण कहते ही महिला ने गुस्से में आकर गोबर-मिट्टी से भरा कपड़ा संत जी के मुँह पर दे मारा। महात्मा जी हँसकर कहने लगे कि भगवान का शुक्र है कि आज तेरा हाथ कुछ देने के लिए तो उठा! साथ ही संत जी ने वरदान भी दिया कि परमात्मा तेरा यह दान फलीभूत करे! ऐसा कहकर वह महात्मा जी चले गए और नदी पर जाकर स्नान आदि किया। उस गोबर-मिट्टी से भरे कपड़े को सुखाकर उसकी बत्तियाँ बनाईं और संध्या के समय ठाकुर जी के मंदिर में उस कपड़े से बनाई हुई एक बत्ती की ज्योत लगा दी।

जैसे ही मंदिर में ज्योत जगी उसी समय उस महिला के चित्त में भी प्रकाश होने लगा। वह पछतावा करने लगी कि हाय! मेरे जैसा पापी कोई और भी होगा, जिसने इतना बड़ा अपराध किया हो? मैंने ऐसे शाँत चित्त महात्मा का निरादर किया है, मुझे तो नरकों में भी

जगह नहीं मिलेगी। इस प्रकार पछतावा करती रही और रोते-रोते उसने सारी रात बिताई। जैसे-जैसे रोती गई, वैसे-वैसे उसका मन निर्मल होता गया। फिर उस स्त्री ने पक्का निश्चय कर लिया कि सवेरे होते ही वह उस महात्मा की कुटिया में जाकर अपने किए गुनाहों की क्षमा मांगेगी। जब सवेर हुई, तो दयालु महात्मा अपने आप ही उस स्त्री के घर की ओर आ गए। वह संत के चरणों में गिरकर ऊँची-ऊँची रोने लगी और कहने लगी कि हे दयालु पुरुष! मैं पापिन आपकी शरण में आई हूँ। कृपा करके मेरे गुनाह बख्श दो और आगे के लिए मुझे ठीक रास्ता दिखाओ। महात्मा ने जब उसको अहंकार रहित और सच्चे मन से पछतावा करते हुए देखा, तो उसे नाम जपने का उपदेश दिया। इस तरह उसका बेड़ा (जीवन रूपी जहाज/संसार रूपी भवसागर से) पार कर दिया। इस कथा से सिद्ध होता है कि जब उस मनमुख स्त्री ने गुरुमुखों वाली चाल चली, तो ही परब्रह्म का स्मरण करके परमगति को प्राप्त हुई। इसलिए यह है-

गुरमुखि चाल जितु पारब्रहमु धिआए।।

दृष्टांत २- एक राजा के घर लड़का पैदा हुआ, जोकि कुबड़ा था और एक बेटी ने जन्म लिया जिसके तीन स्तन थे। उन्हीं दिनों में उस राजा के मंत्री के घर भी एक पुत्र ने जन्म लिया परंतु दुर्भाग्य से वह अंधा था। मंत्री और राजा ने विचार किया कि इन तीनों बच्चों को किसी दूसरे देश में ऐसे स्थान पर रखा जाए, जहाँ हमसे अलग भी रहें और अपने जीवन का निर्वाह भी कर सकें। यह विचार करके अपने नौकरों को हुक्म दिया कि पड़ोसी देश के जंगल में एक मकान का प्रबंध करो। इन तीनों बच्चों को वहाँ छोड़ आओ और इनके खाने-पीने की व्यवस्था भी वहीं कर दो। नौकरों ने हुक्म मानकर वैसा ही किया। उस जंगल में एक साधु रहता था, उसको यह सारी सूचना

मिली। उसने बच्चों पर दया करके उनको विद्या देनी शुरु कर दी। अपनी विद्या द्वारा बच्चों के ग्रह-नक्षत्र देखकर महात्मा ने जान लिया कि ये बालक बहुत तेजस्वी होंगे। किसी दिन ऊँची पदवियों पर पहुँचेंगे और राज-पाट का काम भी बड़ी अच्छी तरह चलाएँगे। महात्मा ने यह बात राजा को भी बता दी, परंतु राजा को यह बात असंभव सी लगी।

खैर! साधु ने बच्चों को विद्या पढ़ानी आरंभ कर दी और बच्चे भी संत जी की सेवा करते रहते। संत जी की आज्ञा अनुसार वे तीनों बच्चे परमात्मा का नाम भी स्मरण करते रहते थे। जंगल में से फल-फूल खाकर पेट भरते थे और संत जी के लिए भी थोड़ा-बहुत ले आते थे। एक दिन वे तीनों बच्चे बाहर घूमने-फिरने गए। रास्ते में लड़की को एक पेड़ नज़र आया जिस पर फल लगे हुए थे। उसे फल खाने की इच्छा हुई। उसने अपने भाइयों को भी यह बात बताई तो सब ने हाँ कर दी। राजा का पुत्र कुबड़ा था, इसलिए फल नहीं तोड़ सकता था। मंत्री का बेटा अंधा था, इसलिए फल नहीं देख सकता था। तीनों ने मिलकर आपस में सलाह की कि मंत्री के लड़के के कंधे पर चढ़कर राजा का पुत्र फल तोड़े। वह स्वयं भी खाए और उन दोनों को भी खिलाए और ऐसा ही किया गया। परमेशर की करनी से ऐसा हुआ कि मंत्री के पुत्र को जो फल खाने के लिए मिले, वे सब खट्टे निकले और उसको शकां हो गई कि राजा का पुत्र स्वयं तो मीठे-मीठे फल खा रहा है और अपनी बहन को भी मीठे ही दे रहा है, परंतु मुझे खट्टे फल देता है। ख्याल आया कि क्यों न इससे बदला लूँ? इस प्रकार क्रोध में आकर उसने राजा के पुत्र को अपने कंधे से नीचे, दूर फेंक दिया। सौभाग्य से उस कुबड़े लड़के की पीठ वहाँ पड़े एक पत्थर से लगी और लगते ही उसका कुबड़ ठीक हो

गया। राजा की बेटी ने अपने भाई के साथ ऐसा बुरा व्यवहार देखा, तो उसने क्रोध में आकर एक पत्थर उठाकर मंत्री के पुत्र के माथे पर ज़ोर से मारा और उसके माथे से खून बहने लगा। क्रोध में आकर मंत्री के पुत्र ने भी राजा की बेटी को ज़ोर से टाँग मारी, जो अचानक उसकी छाती पर लगी और लगते ही उसका तीसरा स्तन अंदर चला गया। थोड़े समय बाद जब मंत्री के पुत्र ने अपनी होश संभाली, तो उसे दिखाई देने लगा। यह सब उस पत्थर के लगने के कारण हुआ था क्योंकि जिस जगह उसे पत्थर लगा था, वहाँ एक नाड़ी में खून जमा हुआ था और इस प्रकार सारा जमा हुआ खून निकल जाने से नज़र ठीक हो गई। इस प्रकार तीनों बच्चे बिल्कुल स्वस्थ हो गए। फिर प्रसन्न होकर सब ने कुछ फल खाए और कुछ संत जी के लिए भी ले आए।

तीनों को निरोग देखकर संत जी ने कारण पूछा, तो सारी बात सुनकर संत जी बड़े खुश हुए और कहने लगे कि यह सब प्रभु के नाम का ही प्रताप है। तुमने गुरुमुख होकर ईश्वर के नाम का जाप किया है, जिसका फल तुम्हें प्रत्यक्ष मिल गया है आप तीनों के शरीर पूरे निरोग हो गए हैं। यह शुभ समाचार संत जी ने राजा को भेज दिया कि आप के तीनों बच्चे बिल्कुल ठीक हो गए हैं, इसलिए अब चाहो तो अपने पास ले जाओ। राजमहलों में यह सूचना पहुँचने से बड़ी खुशी मनाई गई। राजा और मंत्री बड़ी खुशी से संत जी के पास पहुँचे और श्रद्धा से माथा टेक कर सारी बात पूछी। संत जी से सारी बात सुनकर वे कहने लगे कि यह सब आप की ही कृपा है, हम आपके बहुत आभारी हैं। आप जी की कृपा से इन अपाहिज बच्चों का उद्धार हुआ है। फिर राजा ने बताया कि इन बच्चों के अतिरिक्त उसकी कोई संतान नहीं है, जो मेरी राजगद्दी का अधिकारी बने।

कृपा करके मुझे आज्ञा दो कि मैं इन बच्चों को साथ ले जाऊँ।

संत जी ने खुशी-खुशी आशीर्वाद देकर आज्ञा दी और राजा को यह उपदेश दिया कि हे राजन! यह सब गुरुमुख होने का ही प्रताप है। आप भी गुरुमुख होकर ईश्वर का ध्यान-स्मरण करें, तब आपके तन-मन के भी सभी रोग दूर हो जाएँगे। सच्चे सुख और सदैवीय आनंद की प्राप्ति हो जाएगी। राजा और मंत्री ने संत जी को नमस्कार किया और आज्ञा लेकर बड़ी खुशी से बच्चों को साथ लेकर अपने राज महल में पहुँचे। पहुँचते ही राजा ने अपने पुत्र को राजगद्दी दे दी। बेटी की शादी किसी अन्य राजा के पुत्र के साथ कर दी। राजा सब कुछ छोड़कर ईश्वर चिंतन में लग गया। मंत्री का पुत्र भी उसी तरह अपने पिता वाली योग्यता और पदवी को प्राप्त हुआ। इसलिए यह है- *गुरमुखि चाल जितु पारब्रहमु धिआए* ।।

प्रश्न 24. किनि बिधि कीरतनु गाए जीउ।

भाव-परमात्मा की कीर्ति (यश) किस विधि से होनी चाहिए।

उत्तर-गुरमुखि कीरतनु गाए जीउ।

भाव-गुरमुख होकर व परमात्मा की कीर्ति गायन करने से, इस जीव को सच की प्राप्ति होगी।

प्रह्लाद भक्त ने बालकों को नवधा (नौ प्रकार की) भक्ति का उपदेश दिया था जिसमें से पहली श्रवण भक्ति है और दूसरी है कीर्तन भक्ति अर्थात प्रभु का यश करना। इस कीर्तन भक्ति की महिमा बेअंत है। इस जीव की तो केवल एक मात्र जीभ है परंतु शेषनाग की तो हज़ारों जीभें हैं, वह भी ईश्वर की अथाह महिमा करने में असमर्थ हैं। भक्त कबीर जी हरि यश का वर्णन लिखने के बारे में कहा है-

कबीर सात समुंदहि मसु करउ कलम करउ बनराइ।।

बसुधा कागदु जउ करउ हरि जसु लिखनु न जाइ।।

(अंग १३७६)

कहते हैं, यदि मैं सात समुद्रों के पानी को स्याही बना लूँ, सारी वनस्पति (पेड़-पौधों) को कलम बना लूँ और धरती को कागज बना कर हरि का यश लिखने का यत्न करूँ तो भी कीर्तन भक्ति की महिमा का अंत नहीं होगा। राग विद्या की महिमा ज्ञान इंद्रियों की पहुँच से भी परे (अगम) है। कहते हैं कि एक बार शिव जी ने भगवान विष्णु के सामने ऐसा कीर्तन किया, जिसको सुनकर विष्णु भगवान के सारे शरीर में से पानी बहने लगा जिसे ब्रह्मा ने अपने करमंडल में डाल लिया। इस बात में किसी को हैरानी नहीं होनी चाहिए क्योंकि सब को मालूम है कि कभी-कभी नाम के रसिक, कीर्तन करने वाले हरि नाम का ऐसा कीर्तन सुनाते हैं कि भले ही कोई कितना भी कठोर चित्त वाला क्यों न हो, उसका मन भी मोम की तरह पिघल जाता है और प्रेम भावना से आँखों में से आँसू बहने लगते हैं।

दृष्टांत १- लव और कुश भगवान श्री रामचंद्र जी के पुत्र थे। वे बचपन से ही जंगल में वाल्मीकि ऋषि के पास रहे और बड़े हुए। इन बच्चों को वाल्मीकि ऋषि ने ऐसी विद्या सिखाई कि कभी-कभी ये दोनों बालक प्रेम भावना में आकर ऐसा कीर्तन करते थे कि लीन हो जाते थे। मनुष्य की तो बात ही क्या, पशु-पक्षी भी इनके चारों ओर बैठकर अपने शरीर की होश खो बैठते थे। एक बार लव और कुश गाते-गाते अयोध्या नगरी में पहुँचे। उन्होंने अयोध्या के सब लोगों को अपने राग से मोहित कर दिया। अयोध्यावासी उन दोनों को श्री रामचंद्र की सभा में ले आए। वहाँ भी उन्होंने ऐसा मनोहर कीर्तन किया कि सब लोग मोहित हो गए। श्री रामचंद्र जी के हृदय में उन

बालकों के प्रति इतना प्रेम उमड़ा कि वे अपने राज सिंहासन से उठकर इन बच्चों के पास गए, फिर प्यार से दोनों को साथ ले आकर राजसिंहासन पर अपने साथ बिठा लिया। भले ही श्री रामचंद्र जी अंतर्यामी थे, परंतु फिर भी लोक मर्यादा के कारण बालकों से पूछा कि तुम किसके बच्चे हो? उन्होंने उत्तर दिया कि हम बचपन से ही श्री वाल्मीकि ऋषि जी की कुटिया में रहे हैं और हमारा पालन-पोषण भी वहीं हुआ है। इससे ज्यादा हमें कुछ भी नहीं मालूम। श्री रामचंद्र जी ने वाल्मीकि ऋषि से इन बच्चों के बारे में पूछा। ऋषि जी ने बताया कि ये तो आप के ही सुपुत्र राजकुमार हैं। श्री रामचंद्र जी ने बालकों को बहुत प्यार से आशीर्वाद दिया तथा वाल्मीकि ऋषि का भी बहुत उपकार (अहसान) माना। इससे मालूम पडता है कि लव और कुश वाल्मीकि ऋषि गुरुमुख के संग में रहकर और शिक्षा प्राप्त करके गुरुमुख पदवी को प्राप्त हुए। वे ऐसा कीर्तन करते थे, जिसे सुनकर जड़ पदार्थ, चेतन और चेतन जीव, जड़ हो जाते थे। इसे कहा है कि- गुरमुखि कीरतनु गाए जीउ ।।

दृष्टांत २- श्री गुरु नानक देव जी धुर की वाणी (ईश्वरीय वाणी) का कीर्तन द्वारा ही गायन किया करते थे। जब भी दरगाह से आई वाणी उनके हृदय में आती थी, वह अपने साथी भाई मरदाना को कहते थे कि भाई मरदाना, रबाब बजा वाणी आई है। गुरु साहिब जी के ईश्वरीय कीर्तन को सुनकर ना केवल मनुष्य ही बल्कि पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी एकाग्रचित्त हो जाते थे। श्री गुरु जी के कीर्तन की महिमा बेअंत है, अकथनीय है, अलेख है। गुरु साहिब द्वारा ये वाणी रागों पर आधारित कीर्तन करके ही उच्चारण की गई है।

गुरु नानक साहिब जी की पांचवी ज्योति श्री गुरु अर्जन देव ने सिखों को राग विद्या के माध्यम से कीर्तन करने का वरदान दिया था।

सत्ता और बलवंड दोनों ही गुरु जी के हजूरी रबाबी थे परंतु दुर्भाग्य से अहंकार में आ गए थे। वे रबाबी श्री दरबार साहिब (हरिमंदिर साहिब) में अमृतवेला (प्रातः) आसा दी वार का कीर्तन किया करते थे। एक बार उनको अपनी बेटी की शादी के लिए कुछ धन की आवश्यकता पड़ी और उन्होंने इस संबंध में गुरु साहिब जी के पास विनती की। गुरु महाराज ने कहा कि सतगुरु महाराज भला करेंगे, निश्चय रखकर सेवा करते रहो, आपका काम पूरा हो जाएगा। कल जितनी भी भेंट (चढ़ावा) दरबार साहिब में चढ़ेगी, वह सारी आपको ही दे दी जाएगी। भाग्यवश ऐसा हुआ कि अगले दिन भेंट पहले से कम आई, गुरु साहिब ने अपने वचन अनुसार उन्हें दे दी, परंतु भेंट के रुपये कम देखकर उनके मन में बहुत रोष पैदा हो गया। अहंकार के कारण अगले दिन दोनों दरबार में प्रस्तुत न हुए और सोचने लगे कि हमारे कीर्तन के कारण ही तो श्री गुरु महाराज जी के पास संगत आती है। पंचम पातशाह कीर्तन के अत्याधिक प्रेमी थे तो उन्होंने इन रबाबियों को बुलाने के लिए एक सिख को उनके पास भेजा परंतु वे नहीं आए। दो-तीन बार ऐसा हुआ, परंतु उन रबाबियों की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। अंत में निम्रता की मूर्त गुरु जी उनके पास स्वयं गए और उनके घर की डयोढ़ी में खड़े होकर, उनको अंदर से बुलाया। जिन गुरुजनों के दर्शनों को ऋषि और देवता तरसते हैं, आज वह गुरु प्रत्यक्ष रूप में उन अंहकारी रबाबियों के घर चलकर आए और घर के बाहर खड़े रहे। फिर भी वे अभिमानी अपने पलंगों के ऊपर बैठे रहे और घर में आए हुए गुरु साहिब को थोड़े-से भी आदर-सत्कार के साथ न मिले।

परंतु बलिहार! सच्चे पातशाह के चरणों से, जो महाशाँति के भंडार थे और मान-अपमान से कितने ऊँचे उठे हुए थे। उन्होंने स्वयं

ही दया और क्षमा से भरे वचन कहे कि हे प्यारो! गुरु का भंडार अखुट है, तुम्हें जो भी चाहिए, मिलेगा केवल निश्चय रखो और चलकर कीर्तन करो फिर देखो तुम्हारी कामना पूरी होती है कि नहीं। परंतु इस के विपरीत वे तो गुरुओं के प्रति कड़वे वचन बोलने लग गए और श्री गुरु अर्जन देव जी शाँतचित्त उनके वचन सुनते रहे। अंत में जब उन्होंने यह कहकर श्री गुरु नानक देव जी की निंदा की कि यदि भाई मरदाना जी रबाबी गुरु नानक के साथ ना होते तो गुरु नानक को किसने पहचानना था? यह तो हम रबाबियों के वश में ही होता है कि उपमा करके किसी को भी गुरु बना दें। ऐसे अहंकार भरे कड़वे वचन सुनकर श्री गुरु अर्जन देव जी महाराज बड़े गुरुओं की निंदा सहन न कर सके।

गुरु साहिब ने सहज में ही यह वचन कर दिया कि तुम गुरु के निंदक हो, तुम्हारा सारा शरीर कोढ़ी होगा, कोई भी सिख तुम्हारे मुँह नहीं लगेगा और ना ही कोई तुम्हारी सिफारिश करेगा। ऐसा कहकर पंचम पातशाह श्री गुरु अर्जन देव जी महाराज हरिमंदिर साहिब वापस आ गए। गुरु जी ने सिखों को हुक्म दिया कि यदि कोई उनसे बात करेगा या उनकी सिफारिश करेगा तो उसका मुँह काला करके गले में जूतों का हार डालकर गधे पर बिठा कर सारे शहर में घुमाया जाएगा। इसके बाद गुरु साहिब जी ने सिखों को वरदान दिया कि अब यह कीर्तन तुम स्वयं करो। गुरसिखों ने गुरु जी के हुक्म अनुसार जैसे ही कीर्तन करना शुरु किया, तो गुरु कृपा से उनको राग विद्या की बख्शीश मिल गई। गुरु कृपा से सिखों ने बड़ा आनंददायक कीर्तन किया। कीर्तन करने की इस अनमोल दात का प्रसारण निरंतर आज तक गुरु कृपा से गुरसिखों द्वारा सारी दुनिया में हो रहा है।

रबाबियों का प्रसंग तो बहुत बड़ा है, परंतु सारे प्रसंग का भाव

यह है कि गुरु जी के उपरोक्त वचनों के बाद रबाबी कोढ़ गृहस्थ हो गए। कोई भी उनके पास नहीं जाता था। यदि गलती से कोई सिख रास्ते में मिल भी जाता, तो गुरु निकारे हुओं से मुँह मोड़कर निकल जाते थे। इस तरह वे रबाबी थोड़े ही समय में बड़े दुखी हो गए। बहुत पछतावा करते हुए सिखों को विनतियाँ करने लगे कि सतगुरु जी से हमारे गुनाहों की माफ़ी दिलवा दो, परंतु किसी ने भी ऐसी हिम्मत न की। आखिर वे रबाबी, लाहौर निवासी सिख भाई लध्धा जी के पास गए और उसे यह विनती की। बहुत सोच-विचार करने के बाद भाई लध्धा जी ने उनकी विनती मान ली। वह उनको साथ लेकर श्री अमृतसर साहिब की ओर चल पड़ा। श्री अमृतसर पहुँचकर श्री गुरु जी के दरबार में पहुँचने से पूर्व भाई लध्धा ने अपना मुँह काला किया और गले में जूतों का हार डालकर गधे पर चढ़ गया। उसी हालत में श्री गुरु जी के सामने पहुँचकर नम्रता के साथ उन रबाबियों को माफ़ करने की विनती की। श्री गुरु जी ने जब भाई लध्धा को उपकार करने के लिए ऐसा करते हुए देखा, तो फरमाया कि हे भाई लध्धा! तू धन्य है, कोई एक-आध ही तेरे जैसा उपकारी होगा। इन रबाबियों के लिए हमारा यही कहना है कि जिस मुख से इन्होंने श्री गुरु नानक देव जी की निंदा की थी, उसी मुख से यदि अब उनकी स्तुति (उपमा) करेंगे तो इनके दुख दूर हो जाएँगे। फिर सत्ते और बलवंड ने सतगुरु जी की स्तुति में कुछ पउड़ियों (पदों) का उच्चारण किया, जो श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अंदर रामकली राग में दर्ज हैं। इस प्रकार गुरु साहिब की स्तुति करने के पश्चात उसी वक्त उन रबाबियों के शारीरिक और मानसिक दुख दूर हो गए।

पुराने समय में राग की शक्ति के बारे में उल्लेख है कि दीपकों में तेल और बाती डालकर रख देने और दीपक राग का गायन करने

से सब दीये अपने आप जल जाते थे। इसी प्रकार मलार राग गाने से वर्षा हो जाती थी। बसंत राग को गाने से पेड़-पौधों और प्राणियों के मुरझाएँ चेहरे हरे हो जाते थे। कबीर साहिब को गउड़ी राग बहुत अच्छा लगता था और उस राग में गाकर वे मस्त हुए रहते थे। मीराबाई का कीर्तन के प्रति ऐसा प्रेम था कि गाते समय उसे अपने शरीर की भी होश (सुध) नहीं रहती थी। नरसी भक्त जी को केदारा राग बड़ा प्रिय लगता था। वे जब प्रेम से कीर्तन करते थे, तो भगवान जी की मूर्ति के गले से फूलों की माला उतरकर, अपने आप नरसी भक्त के गले में डल जाती थी। एक बार नरसी भक्त के पास कुछ साधु जन आ गए। उनके लिए कुछ राशन उधार लेने के लिए नरसी भक्त, मोदी (राशन के व्यापारी) के पास गया, परंतु मोदी ने कहा कि पहले केदारा राग मेरे पास गिरवी रख, तो मैं राशन दूँगा। लाचार होकर नरसी भक्त ने केदारा राग को गिरवी रख दिया और राशन लाकर संतों को भोजन खिलाया। इसके बाद नरसी भक्त के केदारा राग का वह प्रभाव समाप्त हो गया। किसी दुष्ट ने बादशाह के पास जाकर चुगली कर दी कि हमने नरसी भक्त के बारे में यह बात सुनी है कि केदारा राग गाने पर भगवान जी की मूर्ति से माला उतरकर उसके गले में डल जाती है। आप चलकर प्रत्यक्ष देखो। यदि ऐसा ना हुआ तो नरसी भक्त को झूठा और पाखंडी समझ लेना चाहिए।

बादशाह चुगली करने वाले के कहने पर नरसी भक्त के पास आया और उसे केदारा राग गाने के लिए कहा। उधर भगवान ने भक्त की इज्ज़त रखने के लिए एक नौकर का रूप धारण किया और मोदी को राशन की कीमत देकर केदारा राग छुड़वा दिया। इधर नरसी भक्त के गाने की देर ही थी कि भगवान की मूर्ति से फूलों की माला उतर कर भक्त के गले में आ पड़ी। बादशाह आश्चर्यचकित देखकर

भक्त जी के चरणों में गिर पड़ा और माफ़ी माँगने लगा। इस प्रकार परमात्मा ने अपने भक्त की इज्ज़त रखी और निंदा करने वालों का मुँह काला हुआ। बादशाह ने उस चुगलखोर निंदक को यथायोग्य सज़ा दी। जैसा कि गुरु जी का फरमान है–

हरि जुगु जुगु भगत उपाइआ पैज रखदा आइआ रामराजे।।
हरणाखसु दुसटु हरि मारिआ प्रहलादु तराइआ।।
अहंकारीआ निंदका पिठि देइ नामदेउ मुखि लाइआ।।
जन नानक अैसा हरि सेविआ अंति लए छडाइआ।।

अर्थ–परमात्मा ने प्रत्येक युग में अपने भक्त पैदा किए और उनकी इज्ज़त रखी। दुष्ट राजा हिरण्यकशिपु का वध किया और अपने भक्त प्रहलाद का उद्धार किया। अहंकारियों और निंदकों की ओर से मुँह मोड़कर नामदेव भक्त को सामने कर लिया। श्री गुरु जी कहते हैं कि हमने भी ऐसे प्रभु की आराधना की है, जो अंत में काल से छुड़ाकर जन्म–मरण के चक्र का अंत कर देता है अर्थात मुक्त कर देता है। ऐसी कीर्तन की विधि हर किसी को नहीं आती और जो भी गुरमुखि होकर ऐसा कीर्तन करेगा, उसे ही ऐसी पदवी प्राप्त होगी।

इसलिए यह है– गुरमुखि कीरतनु गाए जीउ।।

इस प्रकार श्री गुरु साहिब जी ने उपर्युक्त अष्टपदी में चौबीस प्रश्नों के उत्तर देकर गुरुमुख पदवी की महानता दिखाई है। सभी प्राणियों को इस गुरुमुखों वाली पदवी प्राप्त करके मनुष्य जन्म सफल करने की प्रेरणा दी है। अष्टपदी की समाप्ति करते समय सतगुरु जी ने जो सार रूप में उपदेश किया है, वह इस प्रकार है–

सगली बणत बणाई आपे।। आपे करे कराए थापे।।
इकसु ते होइओ अनंता नानक एकसु माहि समाए जीउ।।

गुरुमुखों का इस प्रकार का रहन–सहन परमेश्वर स्वयं ही बनाता

है। वह स्वयं ही उन्हें जगत में प्रकट करता है और स्वयं ही उनसे सब कर्म कराता है और जगत का भला करता है। आप ही उन्हें स्थापित करता अर्थात उन की रक्षा करता है। परमात्मा अपने एक स्वरूप में से अनेक गुरुमुखों के रूप पैदा कर देता है। संसार का भला करवा के उन के स्वरूप फिर अपने में ही समा लेता है अर्थात अभेद कर लेता है। यह है गुरुमुखों की महिमा और उन पर परमात्मा की कृपा, बख्शीश और दयालुता। यह परमेश्वर के ही सब रूप हैं। जैसे कि सोने के सब गहने एक सोने से ही बनते हैं। आदि में भी गुरुमुख परमात्मा का रूप होते हैं और अंत में भी वे परमात्मा का ही स्वरूप रहते हैं। बाकी मध्य में भी वे गुरुमुख परमात्मा का ही स्वरूप कहलाते हैं। जैसा कि कहा गया है कि पहले भी अन्न था, बाद में भी अन्न बना और पौधे में से भी अन्न के रूप में ही गुजरा। इसी प्रकार परमात्मा ही हर समय, हर स्थिति और हर प्रक्रिया में अपने स्वरूप को कायम रखता है। गुरुमुख जन शुरु में भी, अंत में भी और मध्य में भी परमात्मा का ही रूप होते हैं, परंतु ऐसा विद्वान कोई विरला ही होता है,जो उन गुरुमुखों द्वारा परमात्मा के स्वरूप को जानकर उस जैसा ही हो जाता है।

जिनि जाता सो तिस ही जेहा।।

जिन्होंने भी गुरु कृपा से परमेश्वर को जाना है, वे उस जैसे ही होते हैं अर्थात उस परमेश्वर का रूप ही होते हैं। ❑

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥

संक्षेप जीवन–महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी महाराज

निर्मल आश्रम के संस्थापक श्रीमान 108 महंत बाबा बुड्ढा सिंह जी का जन्म गाँव हल्लोवाल ज़िला गुरदासपुर में हुआ। आप जी के पिता स० फतेह सिंह व माता श्रीमती शाँति देवी जी धार्मिक विचारों वाले एवं संत सेवी थे। आप दोनों, उस समय के प्रसिद्ध, पूर्ण ब्रह्मज्ञानी तथा उच्च अध्यात्मिक अवस्था के मालिक श्रीमान संत ठाकुर दयाल सिंह जी अमृतसर वालों के दर्शन करने प्रायः अनके पास जाया करते थे। घर में संतान न होने के कारण एक समय उन्होंने संत ठाकुर जी के सम्मुख विनती की और मन्नत (मनौती) माँगी कि पुत्र की बखशिश होने पर उसे गुरु घर की सेवा हेतु आपके चरणों में अर्पण कर दिया जायेगा। महापुरुष मुस्करा कर बोले भाई! पुत्रों के खज़ानों की कुंजियाँ तो श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज गुरु घर के अनन्य सेवक बाबा बुड्ढा जी को सौंप गये हैं। हुकम किया कि श्री हरिमंदर साहिब जाकर दर्शन–स्नान उपरांत ब्रह्मज्ञानी बाबा बुड्ढा जी की बेर के नीचे खडे होकर पुत्र की बखशिश के लिए प्रार्थना करो, सतगुरु कृपा करेंगे। गुरु चरणों में श्रद्धा पूर्वक की हुई प्रार्थना प्रवाण हुई और सन् 1861 ई० में एक बालक का जन्म हुआ। कुछ समय बाद माता–पिता बच्चे को उस समय के गद्दीनशीन ठाकुर संत गुलाब सिंह जी के पास आर्शीवाद लेने के लिए ले गये और बच्चे का नाम रखने के लिये प्रार्थना की। महापुरुष कहने लगे कि भाई! यह बालक तो ब्रह्मज्ञानी बाबा बुड्ढा जी की रहमत है, इसलिए इस का नाम तो बुड्ढा सिंह रखना ही ठीक है।

जब बालक बुड्ढा सिंह की आयु लगभग पांच वर्ष की हुई तो माता–पिता ने संत ठाकुर गुलाब सिंह जी के पवित्र चरणों में प्रार्थना की महाराज! बुड्ढा सिंह आप की अमानत है, इसे स्वीकार करें। बच्चे को आर्शीवाद देने के बाद संत जी ने अपने गुरु–भाई श्रीमान संत धर्म सिंह जी 'समाधी वालों' को सौंपते हुए कहा, यह होनहार बालक गुरुओं की बखशी

हुई अमानत है, इसकी देखभाल करें और अपना शिष्य बनायें। बालक को देखकर संत धर्म सिंह जी ने बच्चे के माता-पिता को कहा इस की आयु अभी छोटी है, इसे हमारी अमानत समझकर घर ले जायें और प्रेम सहित पालन-पोषण करें।

जब बालक बुड्ढा सिंह की आयु लगभग दस साल की हुई तो आज्ञानुसार बच्चे को संत धर्म सिंह जी 'समाधी वालों' के चरणों में ले गये। बाबा जी ने बालक को आर्शीवाद देकर विद्या पढ़ने और डेरे की मान-मर्यादा अनुसार बड़ों का सत्कार, संतों की सेवा आदि सीखने में लगा दिया। आज्ञानुसार बालक बुड्ढा सिंह ने गुरुमुखी लिपि सीखने के पश्चात गुरुवाणी की संथ्या लेनी शुरु की। इसके साथ ही लंगर तैयार करने की सेवा में भी भाग लेने लगे। इस प्रकार गुरुवाणी, गुरु-इतिहास की विद्या प्राप्ति उपरांत काशी (बनारस) जा कर संस्कृत तथा हिन्दी के शास्त्रों का अध्ययन भी किया।

आप कुशल प्रबंधक, महान विद्वान, उच्चकोटि के नीतिवान तथा प्रभावी वक्ता के रुप में जाने जाते थे। सभी गुणों में निपुण होने के कारण निर्मल संत समाज की ओर से आप को श्री पंचायती अखाडा निर्मला का सचिव नियुक्त किया गया। यह सेवा अति कुशलता से निभाने के फलस्वरुप अखाडे के मुख्य अधिकारियों की ओर से आप को रमत प्रचार मंडली का मुखिया बनाया गया। यह मंडली देश-प्रदेश में भ्रमण करके गुरुमत का प्रचार किया करती थी। इस दौरान आप जी ने पंजाब, यू० पी० विशेषतः सिंध प्रांत में गुरुवाणी का बहुत प्रचार किया जिसके फलस्वरुप बड़ी संख्या में सिंधी लोग गुरु घर के अनुयायी बनकर गुरुवाणी के पाठ तथा कीर्तन द्वारा अपना जीवन सफल करने लगे।

हरि जी वसहि साध की रसना

के महांवाक (कथन) अनुसार आप जी द्वारा सहज में कहे हुए वचन सच्चे सिद्ध हो जाते थे। कई रोगी जिन को डाकटरों के इलाज से भी कोई विशेष लाभ नहीं मिलता था, वह भी महाराज जी के पवित्र हृदय से निकले

दयालू वचनों द्वारा सम्पूर्ण रुप में स्वस्थ हो जाया करते थे। कई प्रेमी जो संतान से वंचित थे, उनके घरों में भी आपकी कृपा दृष्टि द्वारा पुत्र की बखशिश हुई।

एक दिन आप के मन में विचार आया कि ऋषिकेश में गुरु नानक देव महाराज जी के घर का कोई स्थान नहीं है। कितना अच्छा हो कि तप-साधना कर रहे साधू-संतों के लिये भोजन एवं निवास का प्रबंध तथा यात्री प्रेमियों के ठहरने की व्यवस्था भी हो जाए। इसी बात को सम्मुख रखकर आप जी ने गंगा किनारे कुछ ज़मीन खरीद कर सन् 1901 ई० में श्री निर्मल आश्रम की नींव रखी।

सर्वप्रथम श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का प्रकाश स्थान बनाया गया। साथ में खाली पडे स्थान पर चार-दीवारी करवाकर साधु-सन्तों के ठहरने के लिए झोपड़ियां बनवा दीं तथा लंगर की व्यवस्था भी कर दी। इसी दौरान संगत का आना जाना शुरु हो गया जिनमें सिंधी लोगों की गिनती अधिक थी। आवश्यकतानुसार आश्रम का विस्तार होने लगा। तदोप्रांत आप जी ने कनखल (हरिद्वार) में निर्मल विरक्त कुटिया के निकट कुछ ज़मीन खरीदी और उसकी चार-दीवारी करवाकर, बाग लगवाया तथा कुछ कमरे भी बनवाए। यह स्थान आजकल निर्मल बाग के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार आप जी ने बनारस (काशी) में कुछ ज़मीन खरीदी ताकि संत-जन तथा परमार्थक विद्या ग्रहण कर रहे विद्यार्थी सुविधा पूर्वक यहां रह सकें। इस स्थान का नाम आपने 'संगत ज्ञान गुफा' रखा। आपका एक आश्रम मसूरी में भी है।

आप जी ने भ्रमण करके अनेक गृहस्थी लोगों को परमार्थक ज्ञान की दीक्षा दी। महंत बुड्ढा सिंह जी के कई सेवक महान संत हुए हैं जिनमें से विशेषतः परम पूज्य विरक्त शिरोमणि, पूर्ण ज्ञानवान, महान तेजस्वी संत बाबा निक्का सिंह जी महाराज, महान तपस्वी संत आत्मा सिंह जी महाराज (जो कि बाद में निर्मल आश्रम के महंत बने), संत जैमल सिंह जी 'अवधूत', संत मान सिंह जी, संत ज्ञानी बलवंत सिंह जी, संत निशचल सिंह जी

'सरगोधा वाले', संत करतार सिंह जी, संत मदनमोहन 'हरि जी', संत राम सिंह जी 'भोरे वाले' और संत अर्जन सिंह जी भिकशु 'खटशास्त्री' आदि थे। श्रीमान महंत बाबा बुड्ढा सिंह महाराज जी के व्यक्तित्व में इतना तेज था कि उस समय के प्रसिद्ध विद्वान भी दूर-दूर से आप जी के दर्शन हेतु आया करते थे जिनमें भाई साहिब भाई वीर सिंह जी, भाई काहन सिंह जी नाभा, भाई अर्जन सिंह जी बागड़ियां, बाबू फिरोज़दीन शरफ, ऐस्. ऐस्. चरन सिंह 'शहीद' तथा प्रिंसीपल गंगा सिंह जी के नाम विशेष हैं।

समयनुसार अब महंत बाबा बुड्ढा सिंह महाराज जी का शरीर अति वृद्ध हो चुका था। एक दिन आपने अपना अंतिम समय निकट जानकर संत आत्मा सिंह जी को आश्रम के सारे स्थानों का महंत नियुक्त कर दिया और अश्विन वदी 12 सन् 1937 ई० को निर्मल बाग कनखल (हरिद्वार) में अपना पंचतत्व शरीर त्याग दिया। उन की पवित्र समृति में प्रत्येक वर्ष अश्विन वदी 12 को निर्मल बाग कनखल में बरसी समागम बडी श्रद्धा सहित मनाया जाता है। इस समागम में हज़ारों की संख्या में जिज्ञासु शामिल होते हैं। वर्तमान गद्दी नशीन पूज्य महंत बाबा राम सिंह जी महाराज, समूह संगत को उपदेश एवं आर्शीवाद द्वारा निहाल करते हैं।

जुलाई, 2012

संत जोध सिंह
निर्मल आश्रम, ऋषिकेश